प्रकाशक :
उषा पब्लिशिंग हाउस
नीम स्ट्रीट, वीर मोहल्ला, जोधपुर

प्रथम संस्करण 1991

मूल्य : 85 रुपये मात्र

मुद्रक
प्रिंटिंग हाउस
जालोरी गेट के अन्दर
जोधपुर

मारवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन—डॉ. प्रेम एंग्रिस

प्राक्कथन

इस पुस्तक में महाराजा अभयसिंह के शासन काल में मारवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का वर्णन विभिन्न पहलुओं के दृष्टिकोण से—प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक—प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि मुख्यतः जीवन इन सब परिस्थितियों का ही समावेश कहा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए मौलिक और सहायक ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। इस समय की उपलब्ध सामग्री अधिकांश अभयसिंह के युद्धों के बारे में मिलती है और बहुत कम विवरण मारवाड़ के जीवन के बारे में प्राप्त होता है। फिर भी मैंने इस प्रकार की मौलिक सामग्री के संकलन का भरसक प्रयास किया है। इस प्रकार इस पुस्तक में महाराजा अभयसिंह के समय के जीवन का सुसंगठित और विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

मैंने जोधपुर विश्वविद्यालय से पी. एच-डी. की उपाधि इसी विषय पर शोध करके श्रद्धेय स्व. डॉ. दशरथ शर्मा के मार्ग-दर्शन में प्राप्त की। इस पुस्तक की सम्पूर्ण विषय सामग्री उपरोक्त शोध प्रबन्ध से ही संकलित की गई है व इसे पुस्तक का रूप देने के लिये अन्य उपलब्ध सामग्री का भी समावेश किया गया है।

इसके अतिरिक्त मुझे अनेक महानुभावों और संग्रहालयों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता प्राप्त हुई है। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के निदेशक के अतिरिक्त वहां के अन्य अधिकारियों का भी मुझे बड़ा सहयोग मिला और इन सबके प्रति मैं विशेष आभारी हूं। राजस्थानी शोध संस्थान, चोपासनी के डॉ. नारायणसिंह भाटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया एवं डॉ. पद्मधर पाठक की सहायता से मैं बहुत सारे ग्रन्थ पढ़ पाई और इस पुस्तक के लिए उपयोग में ले पाई। पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, सुमेर वाचनालय, जोधपुर और जोधपुर विश्वविद्यालय के अधिकारियों की भी मैं बड़ी आभारी हूँ। यदि ये अपने संग्रहालयों की प्रामाणिक सामग्री मुझे उपलब्ध न कराते तो यह प्रबन्ध एक दिवास्वप्न हो जाता।

अन्त में, मैं अपने पति डॉ. ए.सी. ऐंग्रिस की भी अनुग्रही हूँ, जिन्होंने मुझे हर समय अपना सहयोग प्रदान किया।

—प्रेम ऐंग्रिस

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मारवाड़ राज्य का भौतिक आकार

मारवाड़ राज्य का शब्दार्थ

मारवाड़ शब्द के अर्थ का ज्ञान संस्कृत के शिलालेखों, पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों द्वारा होता है। इनमें मारवाड़ राज्य को मरु, मरुस्थल, मरुमण्डल, मरु देश आदि द्वारा सम्बोधित किया गया है। इन समस्त नामों का अर्थ केवल एक ही है – रेगिस्तान या जनहीन देश।[1]

भौगोलिक स्थिति

मारवाड़ राज्य $24^{o}36$ तथा $27^{o}42$ उत्तरी अक्षांश तक तथा $70^{o}6$ से $75^{o}24$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस राज्य की लम्बाई ईशान कोण से नेॠत्य कोण तक 515 किलोमीटर और चोड़ाई उत्तर से दक्षिण तक 273.5 किलोमीटर है। इस राज्य का क्षेत्रफल 90,750 वर्ग किलोमीटर है।[2] राजपूताने के अन्य राज्यों की तुलना में इस राज्य का क्षेत्रफल अधिक है।

सीमा

जोधपुर राज्य के उत्तर में बीकानेर, उत्तर पश्चिम में जैसलमेर, पश्चिम में सिन्ध और थरपारकर, दक्षिण पश्चिम में कच्छ का रण, दक्षिण में पालनपुर और सिरोही, दक्षिण पूर्व में उदयपुर, पूर्व में अजमेर मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ और उत्तरपूर्व में जयपुर राज्य हैं।[3]

---

1 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 2
2 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 1-4
जेम्स टॉड—एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1, पृ. 1 में इस राज्य का क्षेत्रफल 906000 किलोमीटर दिया है।
3 जोधपुर राज्य का इतिहास—गौ. ही. ओझा, भाग 1, पृ. 1-4

में नहीं आ सकता। अतः जल के अभाव को कम करने के लिये कृत्रिम मीठे पानी की भीलों का निर्माण किया गया है जैसे जसवन्तपुरा सागर (बिलाड़ा), बालसमन्द और कायलाना (जोधपुर), सरदारसमन्द (पाली), आदि उल्लेखनीय कृत्रिम भीलें हैं।[1]

जलवायु एवं पैदावार

जलवायु की दृष्टि से यह प्रदेश स्वास्थ्यवर्द्धक है। शीत काल में अधिक शीत और उष्ण काल में अधिक उष्णता इस देश की विशेषता है। फिर भी रात्रि सुखदायी होती है।

जोधपुर राज्य में वर्षा अधिक नहीं होती। यहां वर्षा का वार्षिक औसत केवल 13 इंच है।

उर्वरता के दृष्टिकोण से यहां दो प्रकार की भूमि है। इसी कारण यहां दो प्रकार की फसलें होती हैं। प्रथम प्रकार की भूमि में खरीफ (सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फसलें होती हैं। दूसरी प्रकार की भूमि में जो कि अधिकतर रेतीली है, एक ही फसल खरीफ होती है। खरीफ फसल की देन बाजरा, ज्वार, मक्का, मोठ, मूंग, तिल, रुई और सन है अतएव यही अनाज यहां के निवासियों के मुख्य आहार हैं। रबी की फसल में गेहूं, जौ, चना, सरसों, अलसी और राई उत्पन्न होती है। यहां की खेती का आधार कुओं अथवा तालाबों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था है।[2]

किले

मारवाड़ की सुदृढ़ता के प्रतीक किले हैं। यहां के प्रसिद्ध किले हैं—नागौर, जालोर, सिवाणा, पोकरण, जोधपुर आदि।

भूमिका

1 **राव जोधा व अन्य जोधपुर नरेश**—मारवाड़ का क्रमबद्ध इतिहास राव जोधा (वि. सं. 1510, ई. स. 1453) से प्रारम्भ होता है। राव जोधा रिडमल का पुत्र था। राव जोधा ने ही राज्य का वास्तविक रूप प्रदान किया था। यद्यपि आरम्भ का समय उसका संघर्षों में व्यतीत हुआ था परन्तु धीरे-धीरे सब कठिनाइयों पर उसने विजय प्राप्त कर ली और वि. सं. 1515 (1458 ई.) में राज्याभिषेक का समारोह विधिपूर्वक सम्पन्न

---

1 जोधपुर राज्य का इतिहास—गौ. ही. ओझा, भाग 1, पृ. 5

2 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 6-7

हुआ। राज्याभिषेक के कुछ समय बाद उसने चिड़िया टूंक की पहाड़ी पर एक दुर्ग बनाया और उसके अन्तर्गत जोधपुर नगर की स्थापना की।[1] अब वह सत्तारूढ़ हो चुका था, उसके क्षेत्र में शान्ति और सुख की वृद्धि हो रही थी अतएव उसने गया यात्रा की। इस यात्रा से लौटते समय राव जोधा ने जोधपुर के सुल्तान हुसैन से भेंट की और सुल्तान से गया जाने वाले यात्रियों को कर देने से मुक्ति दिलवाई। गया यात्रा से लौटने के पश्चात् राव जोधा ने 28 वर्षों तक राज्य किया। वि. सं. 1545 की वैशाख सुदि 5 (16 अप्रेल 1488) में राव जोधा का स्वर्गवास हो गया। राव जोधा की मृत्यु और राव मालदेव के सिंहासनारूढ़ होने के मध्य वि. सं. 1545 (1488 ई.) वि. सं. 1589 (1532 ई.) कोई ऐसी घटना नहीं घटी जिसका कोई हानिकारक प्रभाव मारवाड़ राज्य पर पड़ा हो।

राव जोधा का उत्तराधिकारी राव सातल हुआ। उसके भाई राव सूजा का उत्तराधिकारी उसका बड़ा पुत्र बाघा उसके जीवनकाल में ही स्वर्गवासी हो गया अतः राव सूजा के पश्चात् जोधपुर सिंहासन पर कुंवर बाघा का पुत्र राव गंगा बैठा। गंगा के चाचा शेखा को यह उचित नहीं लगा। इसलिये उसने नागोर शासक खानजादा दौलत खां से मिलकर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। किन्तु इस युद्ध में शेखा मारा गया और दौलतखां हारकर नागोर भाग गया।

राव गंगा के पश्चात् राव मालदेव 21 मई 1532 ई. (वि. सं. 1589) को गद्दी पर बैठा। वह बड़ा प्रतापी शासक था। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ में कोई वैभवशाली एवं पराक्रमी नरेश न रह गया था। इस अभाव की कुछ सीमा तक पूर्ति राव मालदेव ने की। राव मालदेव ने अनेक स्थानों को विजय कर अपने राज्य में मिलाकर उसका विस्तार किया। राव मालदेव के 22 पुत्र थे।[2]

राव मालदेव के पश्चात् राव चन्द्रसेन उसका उत्तराधिकारी बना। राव

---

1 जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 1, पृ. 46
नैणसी की ख्यात, भाग 2, पृ. 131
वीर विनोद, भाग 2, पृ. 806

2 (1) राम, (2) रायमल, (3) रत्नसिंह, (4) भोजराज, (5) उदयसिंह, (6) चन्द्रसेन, (7) भांणा, (8) विक्रमादित्य, (9) आसकरण, (10) गोपालदास, (11) जसवंतसिंह, (12) महेशदास, (13) तिलोकसी, (14) पृथ्वीराज, (15) डूंगरसी, (16) जैमल, (17) नेतसी, (18) लिखमीदास, (19) रूपसी, (20) तेजसी, (21) ठाकुरसी, (22) कल्याणदास।

मालदेव के जीवन के अन्तिम समय से ही मुगल सम्राट अकबर की प्रतिभा प्रखर होने लगी थी। परन्तु सम्राट अकबर सहिष्णुता और शान्ति के माध्यम से राजपूतों को अपने वश में करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने बल तथा मैत्री की दोहरी नीति का प्रयोग किया। वि. सं. 1619 (1562 ई.) में आम्बेर के राजा भारमल की पुत्री से विवाह करना उसका प्रथम चरण था। अपनी प्रथम अजमेर यात्रा में ही दूरदर्शी अकबर ने राजपूतों के गुणों एवं दोषों का पूर्णरूपेण मूल्यांकन कर लिया और अपनी कार्यप्रणाली निश्चित कर ली। राव चन्द्रसेन ने अपने को इसी वातावरण में पाया जहां एक ओर गृह कलह में व्यस्त राजस्थान के नरेश थे और दूसरी ओर शक्तिशाली एवं चतुर सम्राट अकबर।

राव चन्द्रसेन अपने पिता के समान ही महत्वाकांक्षी एवं स्वतंत्रता प्रेमी था। परन्तु वह अपने अन्य ज्येष्ठ भ्राताओं के अधिकारों को छीनकर सिंहासनारूढ़ हुआ था इसलिए स्वार्थी सामन्तों को राज्य में विप्लव उत्पन्न करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।[1] राव के ज्येष्ठ भ्राता राम ने सोजत में, दूसरे भाई रायमल ने दुनाड़ा में, और तृतीय भ्राता उदयसिंह ने गांगड़ी और बावड़ी में उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। राव चन्द्रसेन ने इनको सैनिक बल द्वारा दमन की योजना भी निर्मित की जिसके अनुसार उसने सोजत पर आक्रमण भी कर दिया परन्तु मान्य व्यक्तियों के परामर्शानुसार उसने इस कार्य को स्थगित कर दिया। परन्तु राव को इससे सन्तोष न हुआ। वह मुगल सम्राट से मिला। अकबर को इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। उसने मारवाड़ के प्रति अग्रसर नीति का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। वि. सं. 1620 (चैत्रादि 1621 ज्येष्ठ सुदि 12 (22 मई 1564 ई.) को शाही सेना ने जोधपुर पर घेरा डाल दिया। चन्द्रसेन संधि को विवश हो गया।[2] सोजत का परगना राम को दे दिया। परन्तु कुछ समय पश्चात चन्द्रसेन को फिर मुगल आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा और विवश होकर उसे क्षत्रु के सामने से फिर भागना पड़ा। वह निर्द्वन्द योद्धा के समान इधर उधर भटकता रहा और विद्रोह करता रहा। वि. सं. 1637 की माघ सुदि 7 (11 जनवरी 1581 ई.) को इसका देहान्त हो गया। उदयसिंह इसका उत्तराधिकारी बना।

उदयसिंह ने मुगलों से मैत्री बढ़ाने के लिये उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित किये। इसके पश्चात् राजा शूरसिंह शासक हुआ। इसके सम्बन्ध भी

---

1 गौ. ही. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 333
जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 1, पृ. 85

2 निजामुद्दीन अहमदबक्षी—तबकात-इ-अकबरी, भाग 2, पृ. 7

मुगलों से अच्छे रहे। इससे प्रसन्न होकर जहांगीर ने उसका आदर सत्कार किया और जालोर का परगना कुमार गजसिंह को प्रदान किया। राजा सूरसिंह के बाद गजसिंह गद्दी का अधिकारी बना। बादशाह ने इसे 'दल-थम्भन' की उपाधि से विभूषित किया था। महाराजा गजसिंह के पश्चात् महाराजा जसवन्तसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ। यह एक अच्छा राजनीतिज्ञ एवं विद्वान् था। सन् 1658 में बादशाह शाहजहां के रोग पीड़ित होने पर उसके पुत्र दिल्ली के सिंहासन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के षड्यन्त्र करने लगे। औरंगजेब एक बहुत बड़ी सेना लेकर उत्तर की ओर बढ़ा। शाहजहां ने इस स्थिति को देखकर राजपूत राजाओं को ससैन्य दिल्ली बुलाया। आमेर नरेश जयसिंह को बंगाल की ओर तथा महाराजा जसवन्तसिंह को दक्षिण की ओर भेजा। उज्जैन के पास कड़ा मुकाबला हुआ, किन्तु औरंगजेब ने प्रलो-भन देकर मुराद को इससे पूर्व ही अपनी ओर मिला लिया। महाराजा जसवन्तसिंह इससे बिल्कुल नहीं घबराया और उसने भयंकर युद्ध किया। घोड़े सहित पूर्णरूप से क्षतविक्षत हो जाने पर सरदारों ने उसे मारवाड़ लौट जाने पर बाध्य किया। औरंगजेब विजयी हुआ और दिल्ली पहुंचकर बादशाह बन गया। हृदय में कपट होते हुए भी उसने महाराजा जसवन्तसिंह को दिल्ली बुलाकर कीमती उपहार प्रदान किये। इसकी मृत्यु काबुल में हुई थी।

2 महाराजा अजीतसिंह—महाराजा जसवन्तसिंह के देहावसान के पश्चात् उनकी दो रानियों से अजीतसिंह और दलथंभण उत्पन्न हुए।[1] दलथंभण की थोड़े समय बाद मृत्यु हो गयी। औरंगजेब ने रानियों एवं राज-कुमार को दिल्ली बुलवाया और उत्तर मारवाड़ पर अधिकार करने के लिए अपनी फौज भेज दी। दिल्ली में उसने राठौड़ सरदारों को राजकुमार अजीतसिंह को अपने हवाले करने के लिए बहुत प्रलोभन दिए किन्तु स्वामि-भक्त राठौड़ सरदारों ने राजकुमार को गुप्त रूप से मारवाड़ भेज दिया। मुगल सेना ने राठौड़ों को घेर लिया। रानियों की इज्जत बचाने हेतु राठौड़ों ने उन्हें मारकर यमुना नदी में बहा दिया और लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए। वीरवर दुर्गादास ने भयंकर युद्ध किया और लड़ते लड़ते बचकर मारवाड़ आ गया।

बादशाह इससे बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने राव अमरसिंह के पौत्र राव इन्द्रसिंह को जोधपुर का पट्टा लिखकर दे दिया। राव इन्द्रसिंह ने एक बड़ी

---

1 विश्वेश्वरनाथ रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 248
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 478; वीर विनोद, भाग 2, पृ. 828
रामकरण आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 211

फौज लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया परन्तु राठौड़ों ने एक होकर उसका मुकाबला किया। युद्ध में इन्द्रसिंह की हार हुई और वह भाग गया। मुगल सेना ने बार-बार आक्रमण किये और अन्त में जोधपुर पर शाही कब्जा हो गया।[1]

राजकुमार अजीतसिंह का गुप्त रूप से पालन-पोषण होता रहा और जब वह कुछ बड़ा हुआ तो राठौड़ों ने उसे अपना नायक बना लिया। उसका बल प्रतिदिन बढ़ता गया और धीरे धीरे उसने मारवाड़ का बहुत-सा भाग अपने अधिकार में कर लिया।

महाराजा अजीतसिंह के दो विवाह हुए। एक मेवाड़ के महाराजा जयसिंह के छोटे भाई की पुत्री से व दूसरा चौहान चतुरसिंह की कन्या से। चौहान रानी के गर्भ से महाराजा अभयसिंह का जन्म हुआ।

महाराजा अजीतसिंह ने औरंगजेब की मृत्यु के बाद जोधपुर पर आक्रमण किया और घमासान युद्ध के बाद उसे अपने अधिकार में कर लिया।[2] राजधानी को गंगाजल छिड़क कर शुद्ध किया गया और तोड़े हुए मन्दिरों का पुनः निर्माण किया। तब बड़े ठाट-बाट से वह राजसिंहासन पर आसीन हुआ। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर शहजादा मुअज्जम, बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर आसीन हो गया। उसने जोधपुर पर आक्रमण करने का विचार किया और एक बड़ी सेना लेकर रवाना हो गया। महाराजा अजीतसिंह और बादशाह में मेड़ता में सन्धि हो गई। बादशाह ने उसका सत्कार किया और उपाधियों से विभूषित किया।

बादशाह ने दक्षिण की अशान्ति को दबाने के लिये राजा जयसिंह और महाराजा अजीतसिंह को अपने साथ ले लिया। पीछे से उसने सेना भेजकर जोधपुर पर चुपचाप अधिकार कर लिया। महाराजा अजीतसिंह को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने बादशाह का साथ छोड़ दिया और जयसिंह व दुर्गादास के साथ उदयपुर जाकर महाराणा अमरसिंह से मिला। वहां से आकर उसने जोधपुर पर आक्रमण करके फिर अपने अधिकार में कर लिया। फिर वहां से आगे बढ़कर डीडवाना, सांभर और आमेर को जीत लिया और

---

1 मु. देवीप्रसाद—औरंगजेबनामा, भाग 2, पृ. 83; वीर विनोद, भाग 2, पृ. 828-829
वि. ना. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 253
गौ. ही. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 482
जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 2, पृ. 26

2 बाम्बे गजेटियर, भाग 1, पृ. 295; अजीतोदय, सर्ग 17, श्लोक 4-7
जे. एन. सरकार—हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग 5, पृ. 291-2

जयसिंह को पुनः जयपुर का राजा बना दिया। सांभर का विभाजन कर जयपुर व जोधपुर में मिला लिया। अन्त में बादशाह ने महाराजा से सन्धि कर ली और उसका अधिकार जोधपुर पर मान लिया।

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् जहांदरशाह अपने भाइयों को मारकर गद्दी पर बैठा। किन्तु सैय्यद बन्धुओं द्वारा कैद कर लिया गया और फारुकसियर को सिंहासन पर बैठाया गया। नागौर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र म्होकमसिंह ने फारुकसियर को महाराजा के विरुद्ध भड़काया तो महाराजा अजीतसिंह ने भाटी अमरसिंह को दिल्ली भेजकर म्होकमसिंह को मरवा डाला। बादशाह बहुत क्रुद्ध हुआ, उसने सैय्यद हुसेनअली को एक बहुत बड़ी सेना देकर मारवाड़ की ओर भेजा। मेड़ता में यवनों और राजपूतों में सन्धि हो गई। महाराजा कुमार अभयसिंह सैय्यद हुसेनअली के साथ दिल्ली गया।[1] वहां बादशाह ने उसका आदर सत्कार किया। वहां वह बहुत सम्मानित होकर जोधपुर आया।[2]

जब सैय्यद बन्धुओं और फारुकसियर में वैमनस्य हो गया तो महाराजा भी अपने सरदारों सहित दिल्ली पहुंचा। दिल्ली में प्रवेश के समय उसे अपनी मां तथा राठौड़ वीरों का स्मरण हो आया जिन्होंने अपने प्राण वहां न्योछावर कर दिये थे। उसके हृदय में मुगलवंश के प्रति प्रतिशोध की भावना भड़क उठी। किन्तु उस समय वह शान्त रहा। दिल्ली में उसमें व सैय्यद बन्धुओं में यह सन्धि हो गई कि बादशाह के हटने के बाद हिन्दुओं पर से जजिया हटा दिया जायेगा और उनकी धार्मिक उपासना में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचायी जायेगी। सैय्यद बन्धुओं ने अपनी मदद के लिये दक्षिण से अपने भाई को एक विशाल सेना सहित बुलवा लिया। बादशाह गिरफ्तार कर मार डाला गया। सैय्यद बन्धुओं और महाराजा अजीतसिंह ने महल को लूटकर परस्पर बांट लिया। फिर क्रमशः रफीउद्दरजात और रफीउद्दौला को बादशाह बनाया गया किन्तु दोनों अधिक नहीं जीए।[3]

सैय्यद बादशाह ने महाराजा से मंत्रणा करके मुहम्मदशाह को बादशाह बनाया। आगरा में निकोसियर को ईरानी मुगलों ने बादशाह घोषित कर दिया। किन्तु सैय्यदों व महाराजा अजीतसिंह ने आगरा पर आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया। सैय्यद बन्धुओं ने आमेर के राजा जयसिंह पर

---

1 जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 2, पृ. 104; भंडारी खींवसी भी अभयसिंह के साथ दिल्ली गया था; इर्विन—लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ. 290

2 बाम्बे गजेटियर, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 297

3 इर्विन—लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ. 389

आक्रमण करने का निश्चय किया किन्तु जयसिंह की प्रार्थना पर अजीतसिंह ने सैय्यद बन्धुओं को समझा बुझाकर रोक लिया।[1]

इसके पश्चात् अजीतसिंह बड़े ठाट बाट से दिल्ली से रवाना हुआ। बादशाह ने कई बहुमूल्य वस्तुएं उसको भेंट कर सम्मानपूर्वक विदा किया। जोधपुर में उसका बहुत ही शानदार स्वागत हुआ।

जब महाराजा को यह सूचना मिली कि बादशाह ने सैय्यद बन्धुओं को गिरफ्तार कर लिया है तो उसे बहुत क्रोध आया और उसने एक बड़ी सेना लेकर तारागढ़, सांभर, डीडवाना आदि पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। बादशाह ने महाराजा अजीतसिंह का दमन करने के लिए मुज्जफर खान के साथ एक बड़ी विशाल सेना भेजी किन्तु यह जानकर कि महाराजकुमार अभयसिंह राठौड़ वाहिनी के साथ उसकी ओर आ रहा है, वह रास्ते से ही भाग गया। महाराजकुमार अभयसिंह ने दिल्ली के आसपास के प्रदेश लूटकर अपना आतंक चारों ओर फैला दिया।[2] इसके कारण उसका नाम धोकलसिंह पड़ा। महाराजकुमार लूट की विपुल राशि के साथ वापिस लौटा तो महाराजा अजीतसिंह ने उनका खूब स्वागत किया।

बादशाह इस सबसे बहुत घबराया और उसने नाहर खां के साथ एक संदेशा भेजा किन्तु अपने अनुचित व्यवहार के कारण नाहर खां मारा गया। बादशाह ने फिर एक बहुत बड़ी सेना लेकर हरादतमंद खां और हैदरकुल्ली को भेजा। महाराजा जयसिंह भी अपनी सेना के साथ महाराजा का विरोध करने आया। महाराजा अजमेर की रक्षा का भार नीमाज ठाकुर राव अमरसिंह को सौंपकर स्वयं जोधपुर की रक्षा के लिए आया। नीमाज ठाकुर बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु महाराजा जयसिंह ने संधि करवाकर आमेर पर बादशाह का अधिकार करवा दिया। संधि के अनुसार महाराजकुमार अभयसिंह बादशाह के दरबार में दिल्ली पहुंचा। बादशाह ने उसका बड़ा सम्मान किया। किसी घटना के कारण महाराजकुमार के क्रोधित हो जाने पर बादशाह ने अपने गले का हार महाराजकुमार को पहनाकर किसी तरह उसका क्रोध शान्त किया। महाराजकुमार जब दिल्ली में ही था तब महाराजा अजीतसिंह का देहावसान हो गया।[3]

---

1 सतीशचन्द्र : पार्टी एण्ड पोलिटिक्स एट दी मुगल कोर्ट, पृ. 149

2 इर्विन : लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ. 109-10
गौ. ही. ओझा : मारवाड़ राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 594
महाराजा अजीतसिंह री पत्र, 33 (2)

3 विश्वेश्वरनाथ रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 327

अध्याय 1

महाराजा अभयसिंह : मारवाड़ नरेश

परिचय

इस अध्याय में महाराजा अभयसिंह के शासनकाल की महत्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। भाइयों से उसका व्यवहार और मुगल बादशाह, मरहठे एवं पड़ौसी राज्यों से उसके सम्बन्धों का उल्लेख किया गया है।

महाराजा अभयसिंह का जन्म

महाराजा अभयसिंह महाराजा अजीतसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था।[1] यह महाराजा अजीतसिंह की रानी, चतुरसिंह की कन्या, चौहानजी का पुत्र था। इसका जन्म वि. सं. 1759, मंगसिर वदि 14, शनिवार (ई. स. 1702 की 7 नवम्बर) को जालोर में हुआ।[2] उस समय विशाखा नक्षत्र, मिथुन लग्न, शोभन योग और शकुनिकरण था।

अभयसिंह का राजगद्दी पर बैठना

जिस समय इसके पिता का स्वर्गवास[3] हुआ उस समय अभयसिंह दिल्ली में था। सं. 1781 में श्रावण वदि 8 शुक्रवार के दिन महाराजा अभयसिंह राजगद्दी पर बैठा और बादशाह से मुजरा करने के लिए गया तब बादशाह

---

1 वि. सं. 1760, जालोर की सनद के अनुसार यदि उद्योतसिंह को, जिसकी मृत्यु बचपन में हो गई थी, अजीतसिंह का ज्येष्ठ पुत्र माना जाय तो अभयसिंह उसका द्वितीय राजकुमार होगा।
—वि. ना. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 331

2 अभयोदय, सर्ग 2, श्लोक 4

3 अजीतसिंह की हत्या बख्तसिंह के द्वारा की गई (24 जून 1724)।
—वि. ना. रेऊ, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ और ग्लोरीज ऑफ राठौड़, पृ. 119-127

ने उसके केसर का तिलक कर मोतियों का आखा लगाया[1] तथा कई बहु-मूल्य उपहारों के साथ नागौर की सनद भी दी। दिल्ली में रहते समय ही महाराजा अभयसिंह के पास महाराजा जयसिंह की पुत्री के साथ विवाह करने का सन्देश आंबेर से आया। उसने भण्डारी रघुनाथ व अन्य सरदारों की सलाह की परवाह न करते हुए मथुरा जाकर आंबेर नरेश की पुत्री से भाद्रपद वदि 8 (तारीख 1 अगस्त) को विवाह किया। इससे अप्रसन्न होकर चैनकरण दुर्गादासोत (समदड़ी), उदयसिंह, हरिनाथसिंहोत (खींवसर) तथा अन्य कितने ही चांपावत, कूंपावत, जैतावत, करणोत, मेड़तिया, जोधावत, करमसोत तथा उदावत सरदार उसका साथ छोड़कर चले गये। कुछ तो इनमें से महाराजा के छोटे भाई आनन्दसिंह तथा रायसिंह से जा मिले।[2]

अभयोदय[3] से पता चलता है कि बादशाह ने इन्हें राज राजेश्वर की उपाधि भी प्रदान की और सात हजारी मनसब देने के साथ ही जोधपुर पर अधिकार करने के लिये जाने की आज्ञा दी।[4] इस अवसर पर अजीतसिंह से जब्त किये हुए परगनों में से नागोर, केकड़ी परिलाली, मारोट, परवतसर, फूलिया तथा कुछ बाहर के परगने भी अभयसिंह को मिले।[5] दिल्ली से जोधपुर लौटने पर महाराजा का शानदार स्वागत हुआ।[6]

गृह युद्ध

भण्डारी रघुनाथ उस समय दिल्ली में महाराजा के पास था और प्रधान भण्डारी खिवसी पंचोली, रामकिशन खानसामा, पुरोहित रणछोड़ इत्यादि और खवास-पासवान सब देश में थे।

महाराजा अभयसिंह को एक भयंकर गृह युद्ध का सामना करना पड़ा था। आनन्दसिंह, रायसिंह, रतनसिंह आदि भाइयों ने मारवाड़ में अपने स्वतंत्र इलाके स्थापित कर लिये। अभयसिंह ने अपने भाई बख्तसिंह की सहा-

---

1 महाराजा अभयसिंह की ख्यात, बस्ता नं. 20, ग्रन्थांक 26, पृ. 1 (राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर); महाराजा श्री अभयसिंह की ख्यात, पृ. 3

2 सभी सरदारों के नाम देखिये—अभयसिंह की ख्यात, पृ. 7-17

3 अभयोदय देखिये—सर्ग 6, श्लोक 11-12

4 जोधपुर राज्य की ख्यात, जिल्द 2, पृ. 15

5 महाराजा अभयसिंह की ख्यात, बस्ता नं. 20, ग्रन्थांक 36, पृ. 2

6 सूरज प्रकाश, भाग 2, पृ. 129 से 149

यता से अपने विरोधी भाइयों का दमन किया और 1725 के प्रारम्भ में जोधपुर पर अपना कब्जा फहराया।[1]

बख्तसिंह को नागौर का परगना देना

महाराजा अभयसिंह ने फिर नागौर पर आक्रमण किया। वहां के स्वामी इन्द्रसिंह ने गढ़ में रहकर एक मास तक सामना किया, परन्तु अन्त में महाराजा की शक्ति के सामने उसको झुकना पड़ा। वहां से महाराजा मेड़ता गया और अपने छोटे भाई बख्तसिंह को नागौर का राजा बनाया।

ईडर का परगना

आनन्दसिंह और रायसिंह ने ईडर पर अधिकार कर लिया था जो बादशाह ने अभयसिंह को दिया था।[2] महाराणा संग्रामसिंह भी वहां अपना अधिकार जमाना चाहता था और उसने महाराजा जयसिंह (जयपुर) को इसके विषय में लिखा और उसके आग्रह के कारण अभयसिंह ने वि. सं. 1784 (ई. स. 1727) में अपने दोनों भाइयों को मारने की शर्त पर ईडर का परगना महाराणा को दे दिया।[3] महाराणा ने भींडर के महाराजा जैतसिंह (शक्तावत) तथा राय भाई रावल नगराज को ईडर पर कब्जा करने भेजा और उन्होंने जाकर ईडर घेर लिया। आनन्दसिंह तथा रायसिंह को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उन दोनों को लेकर जब महाराजा जैतसिंह महाराणा के पास पहुंचा तो उसने मारने के बजाय उनको अपने पास रख लिया। इससे महाराजा नाराज हुआ और उसने जहानाबाद से वि. सं. 1785, भाद्रपद वदि 2 (ई. स. 1728, ता. 10 अगस्त) को एक उपालम्भ-पूर्ण पत्र महाराणा को भेजा परन्तु उसके पहुंचने से पूर्व ही दोनों भाई वहां से चले गये। इसके कुछ ही समय बाद उन्होंने मेड़ता आदि मारवाड़ के परगनों में उत्पात करना प्रारम्भ कर दिया। इस पर महाराजा ने बख्तसिंह को उधर भेजा। इसी बीच महाराजा जयसिंह का वि. सं. 1785, भाद्रपद

---

1 जी. आर. परिहार : मारवाड़ एण्ड मराठा, पृ. 27, महाराजा द्वारा वि. सं. 1781 के आसाढ़ सुदि 11 एवं मगसिर वदि 7। अभयकरण को लिखे पत्र के अनुसार इस तथ्य की पुष्टि होती है।

2 वीर विनोद, भाग 2, पृ. 997

3 वीर विनोद, भाग 2, पृ. 967-968, अभयसिंह का महाराणा के नाम लिखा हुआ श्रावणादि वि. सं. 1783 (चैत्रादि 1784, आसाढ़ वदि 7), (ई. स. 1727, ता. 31 मई) का पत्र; वीर विनोद, भाग 2, पृ. 169

वदि 13 (ता. 22 अगस्त) का पत्र पहुंचने पर महाराणा ने आनन्दसिंह तथा रायसिंह का उसके पास आने पर ईडर का कुछ इलाका उन्हें दिया।[1]

महाराजा का मेड़ता से दिल्ली जाना

गृहयुद्ध के समय दी गई सेवाओं के बदले बख्तसिंह को नागौर का परगना और राजाधिराज की पदवी प्रदान की गई।[2] (अक्टूबर 1725) और उसको बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएं, सामान व कर्मचारी दिये।[3] उसी वर्ष माघ मास में राज्य का प्रबन्ध बख्तसिंह के हाथ में सौंपकर महाराजा ने मेड़ता से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। परवतसर होते हुए महाराजा सामन्तों सहित दिल्ली पहुंचा।[4] बादशाह ने उसका बहुत आदर सत्कार किया।

अभयसिंह और गुजरात

गुजरात के हाकिम मुबारिजुल्मुल्क सर बुलन्द खां का प्रबन्ध ठीक न होने और शाही आज्ञा की उपेक्षा करने के कारणों से हि. स. 1143 (वि. सं. 1788, ई. स. 1732)[5] में उसका दमन करने के लिये बादशाह ने अपने दरबार में पान का बीड़ा घमाया। किसी की भी हिम्मत पान का बीड़ा उठाने की नहीं हुई परन्तु महाराजा अभयसिंह ने पान का बीड़ा उठाकर विद्रोही सरबुलन्द खां को बादशाह के चरणों में झुकाने की प्रतिज्ञा की। बादशाह ने महाराजा को बहुत से बहुमूल्य उपहार, अस्त्र-शस्त्र तथा 31 लाख रुपया देकर विदा किया।[6]

> 'ताज कुलह सिरपेच जरी तोरा जर कव्वर
> खंजर जमदढ़ खड्ग पमग सिरपाव पटाभर
> तई लोक ताबीन तोपखाना गजवाना
> सझे साह बगसीस लाख इकतीस खजाना

---

1 वीर विनोद, भाग 2, पृ. 969-72

2 अभयोदय, सर्ग 7, श्लोक 4-33, वंश भास्कर से यह पता चलता है कि अभयसिंह ने अपने पिता अजीतसिंह को मारने के एवज में अपने भाई बख्तसिंह को आधा राज्य और नागौर देने का वादा किया था। चतुर्थ भाग, पृ. 3083, छ. सं. 1-5
सूरज प्रकाश, भाग 2, पृ. 224-225

3 इन वस्तुओं की सूची देखें—अभयसिंह की ख्यात, पृ. 36-42

4 अभयोदय, सर्ग 7, श्लोक 41-42

5 जोधपुर राज्य की ख्यात में वि. सं. 1786 दिया है, देखिये—जि. 2, पृ. 132; ओझा ने 1788 वि. सं. लिखा है।

6 सूरज प्रकाश, भाग 2, पृ. 235-248, अभयसिंह की ख्यात, पृ. 43

अेमदावाद दीधो उतन अरापति सोच उथालियो
ईमरां दोयरा हा अभो, होय विदा इम हालियो ॥

(अर्थात् वादशाह ने जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को सरताज, जरी से युक्त सिरपेंच एवं कमरबन्द भेंट किये और खंजर, कटारी, तलवार, घोड़ा, नगोपाव आदि भी प्रदान कर उसे सम्मानित किया। उसके अधीन शाही तोपखाना, हाथियों का समूह एवं 31 लाख रुपयों का खजाना देते हुए अहमदावाद का सूबा भी प्रदान किया। क्योंकि वादशाह की चिन्ता दूर करने का महत् कार्य केवल इसने ही किया, इस प्रकार हिन्दू एवं मुसलमान दोनों वर्गों के देखते हुए ऐसी शान से महाराजा अभयसिंह विदा हुआ।)

इसके वाद दिल्ली से प्रस्थान कर अभयसिंह सर्वप्रथम जोधपुर गया[1] और उसने मारवाड़ और नागौर से 20 हजार अच्छे सवार एकत्रित किये और एक विशाल शक्तिशाली सेना तैयार कर अपने भाई वख्तसिंह के साथ अहमदावाद की तरफ प्रस्थान किया।[2] अहमदावाद के मार्ग में उसने रोहड़ा, पोसालिया और सिरोही के जागीरदारों को परास्त किया।[3] सिरोही राव ने अधीनता स्वीकार करली और अपने भाई की कन्या का विवाह महाराजा से कर दिया। पालनपुर का शासक करीमदाद खां भी महाराजा से आकर मिल गया। महाराजा ने सरदार मुहम्मद खां के पास वीस हजार रुपये की हुण्डी और नायव हाकिमी का पत्र भेजकर आज्ञा दी कि यदि सम्भव हो तो वह शहर गुजरात पर अधिकार कर ले, परन्तु मुहम्मद खां इस प्रयास में असफल रहा।[4]

महाराजा के अहमदावाद से 64 मील उत्तर में सिद्दपुर के निकट पहुंचने पर वहुत-से सरवुलन्द खां के तावेदार महाराजा से मिले। वि. सं. 1787, आश्विन सुदि (ई. स. 1730, अक्टूवर) के प्रारम्भ में अभयसिंह सावरमती के किनारे मोजिर नामक गांव में पहुंचा, जहां से केवल दो मील दूर सरवुलन्द खां के डेरे थे। उसने पहले सरवुलन्द खां को पत्र लिखकर वादशाह की अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव किया। परन्तु यह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया और सरवुलन्द खां युद्ध करने के लिये तैयार हो गया। महाराजा ने दरवार किया जिसमें उसकी सेना के सभी मुखियाओं ने अपनी जोशीली

---

1 जोधपुर राज्य की ख्यात से पता चलता है कि अभयसिंह प्रथम जयपुर जाकर महाराजा जयसिंह से मिला और फिर वहां से चलकर कार्तिक मास में जोधपुर पहुंचा (जि. 2, पृ. 132)।

2 इर्विन : लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ. 205

3 वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, पृ. 357

4 इर्विन : लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ. 200-205

वाणी में सरबुलन्द खां को पराजित करने अथवा प्राण दे देने की प्रतिज्ञा अभयसिंह के सम्मुख की।[1]

महाराजा की तरफ से लड़ने वाली सेना में निम्नलिखित अधिकारी एवं उनकी सेनायें थीं।[2]

1 राजाधिराज बख्तसिंह एवं उसकी सेना।

2 मारवाड़ के सामन्तों की सेनायें।

3 सिरोही के राव की एक टुकड़ी।

4 पालनपुर के अधिकारी करीमदाद खां की सेना।

5 जवामर्द खां, सफदर खां बाबी, कसबाबी मुसलमान, स्वर्गीय मोमिन खां का पुत्र मोहम्मद जाकिर तथा सरदार मोहम्मद ख़ां[3] गोरानी की सेना।

गुजरात युद्ध

युद्ध का संक्षिप्त रूप से विवरण जो 'राजरूपक' में दिया गया है और जिसका उल्लेख 'सूरज प्रकाश' में भी मिलता है, वह इस प्रकार है—

बख्तसिंह बांई ओर की टुकड़ी का सेनापति था और अभयसिंह युद्ध के लिए घोड़े पर तैयार था। चारण, भाट, गुण-गान कर रहे थे। उस समय महाराजा के पास एक लाख सेना थी।[4] महाराजा ने युद्ध आरम्भ करने का नगारा बजाने की आज्ञा दी। उधर सरबुलन्द खां हाथी पर सवार था। उसकी सेना के आंकड़े सूरज प्रकाश में भी कई स्थान पर मिलते हैं। एक स्थान पर करणीदान ने 12,000 सेना का उल्लेख किया है।[5] उसकी सेना में 2,000 तोपें, 4,000 सूतरनालें, 3,000 रहकलें, 12,000 बन्दूकें थीं।[6] सरबुलन्द खां ने नगर के बारह दरवाजों में प्रत्येक पर दो दो हज़ार बन्दूकधारी और दस दस तोपें रखवा दी थीं। इस प्रकार चौबीस हजार बन्दूकधारी थे।[7]

सरबुलन्द खां के साथ हिन्दुओं में मानसिंह और महासिंह थे। प्रथम तोपों की लड़ाई हुई फिर चम्पावत शक्तसिंह, माधोसिंह और कुशलसिंह आगे बढ़े और करणोत अभयकरण शत्रु सेना पर वार करने चला। भाटी भाण,

---

1 सूरज प्रकाश, भाग 2, पृ. 249-306

2 देखिये—राजरूपक, पृ. 765-815

3 इर्विन : लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ. 205

4 राजरूपक, पृ. 710

5 सूरज प्रकाश, भाग 3, पृ. 27; राजरूपक में यह संख्या 5000 है।

6 वही, पृ.28

7 वही, भाग 2, पृ. 350

भागने से हताश होकर पीछे लौटा। उसके लौट जाने पर सारी सेना वापिस लौटने लगी। महाराजा की विजय के वाजे वजे।

राठौड़ एक हजार घायल हुए। मुसलमानों के 6000 मरे।[1]

विजय के बाद

वख्तसिंह के साथ विजय प्राप्त कर अभयसिंह अपने डेरे पर आया और नवाव हारकर अपने डेरे पर गया। यह विजय वि. सं. 1783 में आश्विन सुदि 10 विजयदशमी को हुई। सरवुलन्द खां ने एक वार फिर 5000 सेना लेकर युद्ध किया परन्तु उसे महाराजा के सामने से भागना पड़ा। वख्तसिंह की इच्छा और युद्ध करने की थी। उसी अवसर पर नींवाज ठाकुर अमरसिंह उदावत अहमदावाद पहुंचा और महाराजा के चरणों में उपस्थित हुआ। उसके साथ उसके दो भाई भी थे—जगरामोत उदयसिंह और अनाडसिंह। इनके अतिरिक्त अमरसिंह के साथ और भी वहुत-से उदावत और भाटी भी थे तथा 2000 सूअर भी थे। इनके देखते ही अभयसिंह अत्यन्त खुश हुआ। यह खवर सरवुलन्द खां के पास पहुंची तो उसके मन्त्रियों ने उसे सन्धि के लिए वाध्य किया। सरवुलन्द खां ने सन्धि के लिए अमरसिंह के पास अपना दूत भेजा। सन्धि का प्रस्ताव मिलने पर अमरसिंह महाराजा के पास गया। उसने कहा कि "आपकी विजय हो गई है और आपने यश उपार्जन कर लिया है। अव मुगल आपसे सन्धि करना चाहते हैं और गुजरात का देश अर्पण करते हैं।" अमरसिंह ने यह भी सलाह दी कि सन्धि करने में ही भला है क्योंकि उसने इस वात को स्पष्ट किया कि युद्ध में हार जीत भगवान् के हाथ में होती है। जीता हुआ हार जाता है और हारा हुआ जीत जाता है। अमरसिंह की यह वात सुनकर महाराजा ने अपने हित की वात समझ ली और उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे मुगलों से सन्धि करने को भेजा।[2]

---

1 सूरज प्रकाश के अनुसार मुसलमानों के 4493 सैनिक मारे गये और सरवुलन्द खां के एक सौ पालखीनशीन, आठ हाथीनशीन और एक सौ ऐसे अधिकारी मारे गये जो दीवाने आम के मुख्य अतिथि थे और महाराजा की सेना के 20 वड़े योद्धा और 500 अश्वारोही मारे गये और 700 योद्धा घायल हुए।

2 राजरूपक, पृ. 811-822
भाग 2, पृ. 462-463 के सहरुल मुताखरीन में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

जव वादशाह रिश्वत की शिकायतों के कारण रोशनुद्दौला से अप्रसन्न हो गया तव शाही दरवार में शम्सामुद्दौला का प्रभाव वढ़ने

सने (शम्सामुद्दौला) रोशनुद्दौला
लगा। इसी अवसर पर उमें महाराजा अभयसिंह को गुजरा
सरबुलन्द खां के एवज की सनद इसके पास भेज दी औ
नियुक्त करवाकर उक्त पद को देहली भेजने को लिखा। मह
वहां पहुंच सरबुलन्द खां थोड़ी-सी सेना के साथ अपना ए
कार्य को साधारण समझ भेज दिया। परन्तु सरबुलन्द खां
वहां के प्रबन्ध के लिए र देने के कारण उसे सफलता
आज्ञा मानने से इन्कार कर महाराजा की तरफ से दूसरा प्र
इसकी सूचना मिलने पर अधिक सेना थी। परन्तु सरबु
गया। इसके साथ पहले से नहीं की (इधर बादशाह की तरफ
इसकी भी कुछ परवाह पर अधिकार कर लेने के लिए
पर शीघ्र ही अहमदाबाद में स्वयं महाराजा अभयसिंह क
जा रहा था।[1]) अन्त अहमदाबाद जाना पड़ा। यद्यपि
राठौड़ वाहिनी के साथ भी सरबुलन्द खां ने बड़े जोरों से
पहुंचने पर एक बार ह थोड़े से अनुचरों के साथ महारा
किया, परन्तु बाद में वलाप की बातें कर बोला कि मैं अ
चला आया और मेल-मिलता हूं, मैंने जो सामना किया वह
भतीजे के समान समझ था, इसके अलावा हम दोनों के
इज्जत बचाने के लिए ही ता नहीं है।
प्रकार की व्यक्तिगत शत्रु से कहा कि राह खर्च और भा
उसने महाराजा। महाराजा ने तत्काल उसके कह
गाड़ियों का प्रबन्ध कर दें

सवाई जयसिंह के महाराजा अभय
1 इसकी पुष्टि जयपुर नरेश की कार्तिक सुदि 4 और मिगसर व
लिखे वि. सं. 1782 क
से होती है। और सर जदुनाथ सरकार ने अप
विलियम इर्विन सरबुलन्द खां का महाराजा
20 अक्टूबर 1730 को बाद तीसरे दिन उसका महाराज
युद्ध करना और इसके कुछ दिन बाद अहमदाबाद से
आकर मिलना और फिर महाराजा अभयसिंह के शाही दर
लिखा है। परन्तु स्वयं, वि. सं. 1787 की कार्तिक वदि
अपने वकील के नाम लिखे) के पत्र में इन घटनाओं का उल्ले
1730 की 19 अक्टूबर से पूर्व होना ही प्रकट होता है।
उपर्युक्त घटनाओं का इस

सरबुलन्द खां के साथ सन्धि

इसके वाद अभयसिंह और सरवुलन्द खां के वीच सन्धि हो गई। इससे गुजरात का सूवा अभयसिंह को सौंपा गया और इसकी एवज में महाराजा ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिए एक लाख रुपये और वहां से जाने के समय भार-बरदारी की गाड़ियां और ऊंट देने का वचन किया। इस प्रकार झगड़ा शान्त हो जाने पर सरबुलन्द खां स्वयं महाराजा के कैम्प में आकर उससे मिला। वातों ही वातों में उसने स्वर्गवासी महाराज अजीतसिंह के साथ अपनी मित्रता का वर्णन किया और महाराजा की पगड़ी वदल ली।[1]

वादशाह मोहम्मदशाह के दरवार में नियुक्त महाराजा के वकील भण्डारी अमरसिंह ने वादशाह को सरवुलन्द खां के परास्त होने का समाचार सुनाया जि से वादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भरे दरबार में वाह! वाह!! के शब्दों के साथ महाराजा की प्रशंसा की। मनसव आदि की वृद्धि के साथ ही महाराजा के राज्य की भी वृद्धि की गई।[2]

सब प्रवन्ध करने की आज्ञा दे दी। जब सरबुलन्द खां को महाराजा की तरफ से पूरा-पूरा भरोसा हो गया, तब उसने पुराने सम्वन्ध का उल्लेख कर (सरवुलन्द खां और महाराजा अजीतसिंह पगड़ी वदल भाई थे) अपनी सफेद पगड़ी महाराजा के सिर पर रख दी और महाराजा की वहुमूल्य पगड़ी जिसमें अनेक रत्न टँके हुए थे, उतार कर अपने सिर पर रख ली। इसके बाद यह महाराजा से प्रेम-मिलाप कर विदा हो गया।

परन्तु जिस समय सरबुलन्द खां दिल्ली के मार्ग में था उस समय उसे सरदारों से यह शाही आज्ञा मिली कि महाराजा अभयसिंह का सामना करने के अपराध में उसके लिए दरबार में उपस्थित होने की मनाही हो गयी है इसलिए जब तक दूसरी शाही आज्ञा न मिले तव तक वह दिल्ली न आकर मार्ग में ठहर जावे।

महाराजा अभयसिंह द्वारा शाही दरवार मे स्थित अपने वकील के नाम लिखे अनेक पत्रों से प्रकट होता है कि मरहठों के लगातार उपद्रवो और सरवुलन्द की लूट-खसोट से अहमदाबाद का सूवा उजड़ गया था। इससे वहां की आमदनी से सेना का वेतन नहीं चुकाया जा सकता था। शाही प्रधान मन्त्री भी रुपये भेजने में ढील करता था इसलिये स्वयं अभयसिंह भी वहां रहना पसन्द नहीं करता था।

1 लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ. 211-212

2 सूरज प्रकाश, भाग 3, पृ. 269

लेटर मुगल्स में यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राजाधिराज

अभयसिंह ने पेशवा को अहमदाबाद में बुलवाया और उसे वड़ोदा पर अधिकार करने में पीलाजी के विरुद्ध अजमतुल्ला की सहायता करने को तैयार किया और महाराजा की और पेशवा की सम्मिलित सेना ने वड़ोदा पर चढ़ाई की। परन्तु इसी बीच सूचना मिली कि निजामुल्मुल्क स्वयं बाजीराव पेशवा को दबाने के लिए गुजरात की तरफ चला आ रहा है। इस पर पेशवा वड़ोदा की चढ़ाई का विचार छोड़ कर दक्षिण की तरफ चला गया।[1]

---

1 महाराजा ने अपने वकील के नाम लिखे वि. सं. 1787 की चैत्र सुदि 14 के पत्र में लिखा है कि—त्र्यंवकराव दाभा़ से हमारी और बाजीराव की सेनाओं का युद्ध हुआ। इसमें त्र्यंवक, निजाम की फौज का सरदार मुगल मोमीनयार खां और मूलाजी पंवार मारे गये और पंवार ऊदा, चिमना और पण्डित के साथ ही पीलाजी का वेटा भी पकड़ा गया। इस प्रकार हमारी विजय हुई। पीलू, त्र्यंवकराव और कंठा की फौजें भागीं। पीलू भागकर डमाई में जा छिपा। वड़ोदा का प्रवन्ध उसके भाई के हाथ में है। दोनों स्थानों पर हमारी फौजें पहुंच गई हैं। शीघ्र ही दोनों स्थान उनसे खाली करवा लिये जायेंगे। कंठा भागकर निजाम के पास गया है। इसलिये तुम नवाव से कहकर निजाम को बादशाह की तरफ से हिदायत करवा देना, जिससे हमारे कथनानुसार चलें और कंठा, पीलू इत्यादि को पनाह न दें। इस युद्ध में निजाम की सेना भी मारी गई है। इससे सम्भव है कि निजाम इधर चढ़ आवे और उससे युद्ध हो। अतः बादशाह से शीघ्र ही उसे हिदायत करवा दी जाये।

इस वार बाजीराव ने बादशाह की अच्छी सेवा की है इसलिये उसको और राजा साहू को खिलअत, फरमान और हाथी तथा चिमना को खिलअत भिजवाने की कोशिश होनी चाहिए। साथ ही नवाव से वातचीत कर इनके लिए मनसव की भी कोशिश होनी चाहिये। निजामुल्मुल्क के कहने से नवाव ने लिखा है कि बाजीराव को किसी प्रकार की मदद न देकर निकाल दें। परन्तु बाजीराव ने बादशाह की सहायता की। पीलाजी और कंठा आठ वर्षो से परगने दवाये वेठे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाव लोगों के कहने से गड़वड़ करेगा, तो हम गुजरात का सूवा छोड़कर चले आवेंगे। निजाम तो सिर्फ हम लोगों को आपस में लड़ाना चाहता है। यदि वह इधर आया, तो अवश्य ही दण्ड दिया जायेगा।

वि. सं. 1787 की चैत्र सुदि 14 के दूसरे पत्र में महाराजा ने लिखा है कि—बाजीराव के पत्र से ज्ञात हुआ है कि निजाम ने हमारे बादशाह के असली पत्र उस (बाजीराव) के पास भेजकर उसको लिखा

2 पीलाजी—स्वर्गीय खाण्डेराव दाभाडे का प्रतिनिधि सोनगढ़ का स्वामी तथा भीलों एवं कोलियों का मददगार होने के कारण पीलाजी गायकवाड़ स्वभावतः अभयसिंह को कांटे के समान खटकता था। बड़ौदा नगर और डभोई के किले पर अधिकार हो जाने से उसका पक्ष अधिक मजबूत हो गया था।[1] खांडेराव को गुजरात की चौथ उगाहने का हक प्राप्त था। माही नदी के पास के इलाके से चौथ उगाहने के बाद खांडेराव की विधवा पत्नी उमा बाई ने आस-पास के प्रदेश की चौथ उगाहने के लिए पीलाजी गायकवाड़ को नियुक्त किया। पीलाजी गायकवाड़ डाकोर नामक स्थान पर चौथ उगाहने के लिए आया। जब महाराजा को इसकी सूचना मिली तो वह भी सेना और तोपखाने सहित उससे लड़ने के लिए रवाना हुआ। परन्तु प्रकट रूप में उसने अपने आदमियों को पीलाजी से बात करने के लिए भेजा, जिसको महाराजा ने यह भी आदेश दिया था कि 'अवसर पाते ही पीलाजी को मार डालना'। महाराजा के आदमियों ने ऐसा ही किया और बातचीत करने के बहाने कटार से पीलाजी गायकवाड़ का काम समाप्त कर दिया। पीलाजी के आदमियों ने घातक को मार डाला।[2]

इसके बाद महाराजा ने बड़ौदा पर अधिकार कर लिया। मरहठों ने बड़ौदा और दूसरे परगने छोड़कर डभोई के किले में, जो सुरक्षित स्थान माना जाता था, शरण ली। इस पर महाराजा ने डभोई दुर्ग को भी घेर लिया।

है कि बादशाह तो उसे पकड़ना या दण्ड देना चाहता है और वह व्यर्थ ही अपने सजातियों से लड़कर अपना बल क्षीण कर रहा है।[1] इस पर उसका विश्वास उठ गया है, और वह यहां से जाना चाहता है। इसलिये उसके नाम फरमान शीघ्र भिजवाना चाहिये अन्यथा वह चला जायगा। नवाब को भी अब निजाम से सावधान हो जाना चाहिये। इस समय कंठा निजामुलमुल्क के पास गया हुआ है। अगर वह यहां वापस आयेगा तो अवश्य मारा जायगा।

---

1 मिर्जा मुहम्मदहसन, मिरात-इ-अहमदी, जि. पृ. 133-5, केम्पबेल, गेजेटियर आफ दी बाम्बे प्रेसिडेंसी, भाग 1, खण्डक 1, पृ. 312, जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 2, पृ. 139।

---

1 केम्पबेल : गजेटियर आफ दी बाम्बे प्रेसिडेंसी, भाग 1, पृ. 313

2 मिर्जा मुहम्मदहसन, मिरात-इ-अहमदी, जि. 2, पृ. 142-43, केम्पबेल गजेटियर।

परन्तु अन्त में वर्षा ऋतु आ जाने से कुछ ही दिनों में उसको वहां का घेरा उठाना पड़ा ।[1]

---

1 वाम्बे गजेटियर, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 313, वि. सं. 1788 (श्रावणादि), चैत्रादि सं. 1789 की चैत्र सुदि 11 के महाराजा के पत्र में, जो नडियाद से लिखा गया था, लिखा है—पीलाजी की फौज के माही पार करने पर हमारी सेना भी चंडूला से बाहर निकल कूच की तैयारी करने लगी । यह देख पीलाजी के आदमी हमसे मिलने आये । हमने उनसे वड़ोदा व डभोई आदि बादशाही थाने छोड़कर शाही सेवा स्वीकार करने को कहा । परन्तु पीलाजी ने उत्तर में कहलाया कि वह तीन सूबेदारों के समय से वड़ोदे पर कब्जा किये हुए हैं । सरबुलन्द ने उस पर चढ़ाई की थी, परन्तु उलटे उसे चौथ देने का वायदा कर लौटना पड़ा ।

मरहठे सम्मुख रण में लोहा न लेकर इधर-उधर से हमला कर शत्रु सैन्य को तंग करते हैं । इससे जैसे ही हमारी अग्रिम सेना पांच कोस आगे बढ़ी वैसे ही पीलाजी भागकर डाकोर जा पहुंचा ।

इस पर हमने सोचा कि इस प्रकार चढ़ाई करने से वह और भी दूर भाग जायेगा । अत: पंचोली रामानन्द, ईदा लखधीर और भण्डारी अजबसिंह को उससे बातचीत तय करने के बहाने उधर रवाना किया । उनसे यह भी कह दिया था कि तुम्हारी तरफ से सूचना मिलते ही वहां से सेना रवाना कर दी जायेगी ।

इसके बाद चैत्र सुदि 9 को 2,000 चुने हुए सवार भेजे गये । बातचीत करने को गये हुए हमारे आदमियों ने पीलाजी को मार डाला । इसी अवसर पर (सुबह होते-होते) हमारी सेना के सवार भी वहां पहुंच गये । इससे पहले पीलाजी का भाई मेमा और उसके बहुत से सैनिक भी मारे गये । 700 घोड़े और जंजले (लम्बी बन्दूकें) तथा अन्य बहुत-सा सामान लूट में हमारे सैनिकों के हाथ लगा ।

अब हम शीघ्र ही वड़ोदा पहुंच उसे भी दुश्मन से खाली करवाने वाले हैं । हमारी सेना के 40 सिपाही मारे गये और 50 जमादार व 100-150 वीर घायल हुए हैं ।

इस बात की पुष्टि वि. सं. 1788 (चैत्रादि सं. 1789) वैशाख सुदि 13 के महाराजा के एक अन्य पत्र से भी होती है । उसमें पीलाजी के साथ 1,500 सरदारों और 5,000 पैदल सिपाहियों के होने का उल्लेख है । साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि—बातचीत करने गये हुए हमारे आदमियों का पत्र मिलते ही हमने सेना भेज दी थी । जैसे ही

यह सेना पीलाजी के लश्कर के पास पहुंची वैसे ही लखधीर ने अपनी वापस रवानगी की आज्ञा प्राप्त करने के बहाने पीलाजी के निवास स्थान में घुसकर उसे मार डाला। इसी अवसर पर पीलाजी का भाई भी सख्त घायल हुआ और उसके साथ के 5 सरदार मारे गये। शत्रु के सवारों के 800 घोड़े हमारी सेना के हाथ आये।

इसके बाद हम सेना लेकर वैशाख सुदि 8 को बड़ोदा पहुंचे। कंडाली की गढ़ी और दूसरे दो चार स्थानों से शत्रु मार भगाया गया। अब वे लोग नर्मदा पर कोरल गांव और डभोई के किले में एकत्रित हुए हैं। इनकी संख्या अत्यधिक है। साथ ही त्र्यंबकराव की मां और उदा पंवार को भी इनकी सहायता में आने की सूचना है। आने पर उनको भी सजा दी जायेगी।

कल हम बड़ोदा से रवाना होकर नर्मदा की तरफ जाने वाले हैं। अब तक 20 किले तो शत्रुओं से छीन लिये गये हैं और जो बच गये हैं उन पर शीघ्र ही कब्जा कर लिया जायेगा।

वि. सं. 1788 (चैत्रादि संवत् 1789) की ज्येष्ठ वदि 2 के महाराजा के पत्र में लिखा है कि शत्रु ने डभोई के किले में एकत्रित होकर उपद्रव उठाया है। एक तो वहां शत्रुओं की बड़ी संख्या है। दूसरे वह किला भी बहुत मजबूत है और हमारे पास उसके मुआसरे के योग्य बड़ी-बड़ी तोपों का भी अभाव है। शीघ्र ही बरसात का मौसम आने वाला है। यदि इससे पूर्व ही उक्त किला हाथ न आया तो वहां मरहठों का और भी दखल बढ़ जायगा और उस समय उसका हाथ आना कठिन हो जायेगा। वि. सं. 1788 (चैत्रादि सं. 1789) की आषाढ़ वदि 11 के महाराजा के पत्र में भी इसी प्रकार की बातें लिखी हैं। परन्तु उससे यह भी ज्ञात होता है कि बड़ोदा और जंबूसर के किले तो इसके पूर्व ही जीत लिये गये थे। उस समय डभोई के किले वालों के साथ युद्ध हो रहा था। चांपानेर का बड़ा किला भी शत्रुओं के अधिकार में था। महाराजा की सेना को लम्बी नालियों वाली तोपों की सख्त जरूरत थी इसलिये महाराजा ने अपने वकील को लिखा था कि वह नवाब (शाही प्रधान मन्त्री) से कहकर सूरत के किलेदार के नाम शीघ्र ही दो बड़ी तोपें भेजने की आज्ञा भिजवादे। काम होने पर वे तोपें लौटा दी जायेंगी। इसी के साथ सोहराब खां को भी अपनी सेना लेकर वहां पहुंचने का हुक्म भिजवाने में शीघ्रता करने को लिखा गया था।

ये सब पत्र महाराजा ने शाही दरबार में रहने वाले अपने वकील के नाम लिखे थे।

3 **उमाबाई**—वि. सं. 1789 के फाल्गुन (ई. स. 1733 फरवरी) में खांडेराव की विधवा स्त्री उमाबाई ने पीलाजी गायकवाड़ की मौत का बदला लेने के लिये उसके पुत्र दामाजी गायकवाड़ को साथ लेकर अहमदाबाद पर आक्रमण कर दिया।[1] इसमें दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के द्वारा यह निश्चित किया गया कि इसे वहां की आमदनी की चौथ (चौथा भाग) और दसोंत (दसवां भाग) के अतिरिक्त अहमदाबाद के खजाने से अस्सी हजार रुपये और दिये जाय। बादशाह ने भी महाराज की तय की हुई सन्धि को स्वीकार कर लिया और इनके लिये एक खिलअत भेजी।[2]

इसके बाद अभयसिंह ने गुजरात की सूबेदारी रत्नसिंह भण्डारी को सौंप दी और स्वयं जोधपुर चला आया।[3]

---

1 जोधपुर में ख्यात में लिखा है कि उमाबाई सतरह हजार फौज के साथ चढ आई तब महाराजा ने बख्तसिंह को बुलाने के अतिरिक्त जोधपुर मेड़ता आदि से भी फौज बुलाई। महाराजा तथा बख्तसिंह तो किले में ही रहे और सारी फौज के मुत्सद्दियों के डेरे किलकिला नदी पर हुए। कुल फौज बीस हजार थी। दुर्गादास के पुत्र अभयकरण और खाण्डेराव में भाईचारा था, जिससे महाराजा ने उसे उमाबाई के पास भेजा। उमाबाई ने उससे कहा कि हमारी गुजरात में चौथ लगती है, आपने दगाबाज बाजीराव से क्यों बात की और पीलाजी को क्यों मारा ? अब या तो सम्मुख होकर युद्ध करो या चौथ दो। इस पर अभयकरण ने डेढ लाख रुपया ठहराकर इसकी सूचना महाराजा को दी। महाराजा की सेना के भण्डारी, रत्नसिंह, भण्डारी विजयराज, मेहता जीवराज, पंचोली लालजी आदि को यह बात पसन्द नहीं आयी और उन्होंने उमाबाई की फौज पर चढाई कर दी। लड़ाई होने पर जीवराज मारा गया। इसके दूसरे दिन महाराजा ने अभयकरण को पुनः उमाबाई के पास भेजकर बात कराई और दो लाख रुपया देना ठहराकर उसे वापस लौटाया।

—जोधपुर राज्य की ख्यात : जि. 2, पृ. 141

2 बाम्बे गजेटियर, भाग 2, खण्ड 1, पृ. 314

3 बाम्बे गजेटियर भाग 1, पृ. 314, इसमें महाराजा का जोधपुर होते हुए दिल्ली जाना भी लिखा है, जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख मिलता है। उससे यह भी पता चलता है कि अभयसिंह अपने भाई बख्तसिंह सहित पहले जालोर गया। जहां से बख्तसिंह तो नागोर चला गया और अभयसिंह कुछ समय वहां रहकर जोधपुर चला आया। (जि. 2, पृ. 141-142)

4 **राजाओं का सम्मेलन**—मरहटों के बार-बार आक्रमणों के कारण सवाई जयसिंह (जयपुर नरेश) के प्रयत्न से वि. सं. 1791 श्रावणादि 13 (ई. स. 1734 जुलाई) को हुरडा नामक स्थान पर आपसी एकता के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा पत्र लिखा गया जिसमें जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों ने भाग लिया।[1] इस प्रतिज्ञा पत्र की शर्तें निम्नलिखित थीं—

1 सब राज धर्म की शपथ खाते हैं कि वे एक दूसरे के सुख-दुख में साथ देंगे। एक का मान तथा अपमान सबका मान अथवा अपमान समझा जावेगा।

2 एक के शत्रु को दूसरा अपने पास नहीं रखेगा।

3 वर्षा ऋतु के बाद कार्यारम्भ किया जायगा, तब सब राजा रामपुरा में एकत्र होंगे। यदि कोई किसी कारणवश स्वयं न आ सके तो अपने कुंवर को भेजेगा।

4 यदि कुंवर अनुभव की कमी की वजह से कोई गलती करे तो महाराजा ही उसको ठीक करेगा।

5 कोई नया काम हो तो सब एकत्र होकर करेंगे।

5 **मल्हारराव**—वि. सं. 1791–92 (सन् 1734-35) में अभयसिंह मल्हारराव को दबाने के लिए शम्सामुद्दौला के साथ अजमेर और सांभर की ओर गया। यद्यपि उस समय महाराजा की सम्मति युद्ध के पक्ष में थी तथापि राजा जयसिंह ने बीच में पड़कर उसे रोक दिया और बादशाह की तरफ से मरहटों को चौथ देने का प्रबन्ध करवा दिया।[2]

---

1 विस्तृत वृत्तान्त के लिये देखिए : ओझा : राजपूताने का इतिहास, जि. 2, पृ. 937-8); वीर विनोद, भाग 2, पृ. 1218-21, वंशभास्कर भाग 4, पृ. 3227-8; टाड : एनाल्स, जि. 1, पृ. 482-3 और टिप्पणी।

कर्नल टाड ने इस प्रतिज्ञापत्र की तिथि श्रावण सुदि 13 दी है और 'वंशभास्कर' में सब राजाओं का कार्तिक सुदि में एकत्र होना लिखा है। यह दोनों बातें ठीक नहीं हैं। प्रतिज्ञापत्र में श्रावण वदि 13 ही दी गई है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का संक्षिप्त वर्णन है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि अभयसिंह ने इस अवसर पर लाल डेरा खड़ा किया था और बादशाह को यह सुझाया गया कि वह कुछ फितूर करने वाला है। परन्तु भण्डारी अमरसिंह ने इस बारे में बादशाह को तसल्ली दी जिससे उसने महाराजा के पास सिरोपाव तथा आभूषण आदि भिजवाये। (जि. 2, पृ. 142-3)

2 वि. ना. रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 348.

शाही सेना की मदद करने के कारण मल्हारराव होल्कर महाराजा से अप्रसन्न था। इसी से वि. सं. 1793 (ई. सन् 1736) में उसने कंतजी के साथ गुजरात से आगे बढ़ मारवाड़ पर चढ़ाई की।[1] यद्यपि वह कुछ दिन तक यहां के कई प्रान्तों में लूट खसोट करता रहा (जालोर, सोजत, बिलाड़ा, मेड़ता और जोधपुर आदि) परन्तु महाराजा के सरदारों और मुसाहिबों ने उसे शीघ्र ही लौट जाने पर बाध्य कर दिया। अभयसिंह भी इस घटना की सूचना पाकर दिल्ली से रवाना होने वाला था लेकिन इतने में ही होल्कर के लौट जाने के समाचार मिल जाने से उसने अपना विचार स्थगित कर दिया।

6 **गुजरात की पुनः सूबेदारी प्राप्त होना**—गुजरात में मारवाड़ियों पर जुल्म के कारण बादशाह ने वि. सं. 1793 (ई. स. 1736) गुजरात का सूबा मोमिनखां को दे दिया।[2] परन्तु जब उसने उक्त प्रान्त पर अधिकार करने में अपने को असमर्थ पाया तब रंगोजी को खास अहमदाबाद नगर, उसके आसपास का प्रदेश और कंवे (खंभात) को छोड़ कर उस सूबे की सारी आय का आधा भाग देने की प्रतिज्ञा पर अपनी सहायता के लिये तैयार किया। यह देख महाराजा ने अपने प्रतिनिधि रत्नसिंह को उनके सम्मिलित बल का यथा शक्ति मुकाबला करने की आज्ञा भेजी। परन्तु जब मोमिनखां और मरहटों की विशाल सेनायें अहमदाबाद के बिल्कुल निकट पहुंच गईं तब रत्नसिंह ने लाचार होकर वहां का सारा हाल महाराजा को लिख भेजा। इस पर महाराजा को इतना क्रोध आया कि वह बादशाह के सामने ही दरबार से उठकर रवाना हो गया। यह देख उपस्थित शाही अमीरों

---

1 बोम्बे गजेटियर, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 317, उल्लेखित मारवाड़ का इतिहास; वि. ना. रेऊ, भाग 1, पृ. 349

2 रत्नसिंह भण्डारी की हाकिमी में गुजरात के निवासियों पर बहुत जुल्म हुए थे। झूंठा आरोप लगा-लगाकर व अलग-अलग बहानों से लोगों से मनमानी रकमें वसूल करता और उनका सामान लूट लेता। उसके जुल्म से तंग होकर कितने ही लोग अपना घर-बार छोड़कर चले गये। बहुत से व्यक्तियों ने आत्महत्या कर ली और कितने ही लोग पागल हो गये एवं कितनों ने व्यापार बन्द कर दिया और वे मारवाड़ की ओर आ गये। गुजरात में जुल्म के कारण बादशाह का मन महाराजा से फिर गया। इस पर महाराजा अभयसिंह के स्थान पर मोमिन खां को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया।

देखिए—ओझा, राजपूताना का इतिहास, भाग 2, पृ. 642-943

में घबराहट छा गई और उन्होंने महाराजा को वापस बुलाकर बादशाह से गुजरात की सूबेदारी फिर से नाम लिखा दी।[1]

7 अहमदाबाद का आधा नगर मरहटों के अधिकार में आना—परन्तु इसी के साथ बादशाह ने यह इच्छा प्रकट की कि गुजरात की नायबी भंडारी रतनसिंह से लेकर राठौड़ अभयकरण को दी जाय। इस आज्ञा के पहुंचने पर मोमिनखां ने यह प्रस्ताव किया कि यदि रत्नसिंह बादशाही हुक्म के अनुसार अपना कार्यभार अभयकरण को सौंप दे और नगर की रक्षा का भार फिदाउद्दीनखां को दे दे तो मैं कैंबे (खंभात) की ओर जाने को तैयार हूँ। परन्तु रत्नसिंह ने यह बात नहीं मानी। इस पर खां ने दाभाजी मरहटे को भी अपनी सहायता के लिये बुलवा लिया। इस प्रकार मरहटों की सहायता लेकर मोमिन ने अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि रत्नसिंह ने एक बार तो बड़ी वीरता से उनकी सम्मिलित सेना को मार भगाया, तथापि अंत में नगर को अधिक काल तक सुरक्षित रखना असंभव समझ मोमिन से सन्धि कर ली। इसी के अनुसार वह (मोमिनखां) से अपने मार्ग व्यय के लिये कुछ रुपये लेकर, शस्त्रों से सजे दल के साथ नगर से रवाना हो गया। उनके इस प्रकार चले जाने से अहमदाबाद पर मोमिनखां का अधिकार हो गया परन्तु इसके साथ ही उस प्रांत की आधी आमदनी के अतिरिक्त अहमदाबाद का आधा नगर भी मरहटों के अधिकार में चला गया।[2] इस घटना के बाद महाराजा दिल्ली से रवाना होकर सांभर, अजमेर और मेड़ता होते हुए जोधपुर चला आया।[3]

बीकानेर से सम्बन्ध

कुछ समय बाद महाराजा अभयसिंह और उसके भाई बख्तसिंह के बीच मनमुटाव के कारण महाराजा ने फौजों के साथ बख्तसिंह के इलाके की सीमा

---

1 बाम्बे गजेटियर, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 318-319

2 बाम्बे गजेटियर, भाग 1, खण्ड 1, पृ. 319-320। वि. सं. 1795 (ई. स. 1738-1739) में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल बादशाहत को और भी शिथिल कर दिया। (क्रोनोलोजी ऑफ मॉडर्न इण्डिया, पृ. 177-178)।

3 ख्यातों में लिखा है कि वि. सं. 1795 (ई. स. 1738) में महाराजा की आज्ञा से राठौड़ वाहिनी ने भिणाय की तरफ चढ़ाई कर गौड़ अमरसिंह के राजगढ़ और सांवर के शक्तावतों से घटियाली, पीपलाद और चौसल आदि छीन लिए थे। अन्त में शक्तावतों ने दस हजार रुपये देकर सन्धि कर ली।

के पास डेरा किया। वख्तसिंह की अकेले अपने भाई का सामना करने की सामर्थ्य न थी जिससे उसने बीकानेर महाराजा जोरावरसिंह से मेल की बातचीत शुरू की। जब महाराजा को इस रहस्य का पता चला तो वह तत्काल जोधपुर चला गया और उसने बीकानेर के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की।

वि. सं. 1796 (ई. स. 1739) में महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी (उस समय वहां महाराजा जोरावरसिंह का राज्य था) और किले को चारों तरफ से घेर लिया। जब कुछ दिन बीत जाने पर वहां के किले की रसद समाप्त हो गई, तब बीकानेर वालों ने वख्तसिंह से सहायता की प्रार्थना की। इस बीच वख्तसिंह ने मेड़ता पर भी अपना अधिकार कर लिया था और जोरावरसिंह के पास भी पत्र लिखा कि "आप निश्चिन्त रहें मैं यहां से जोधपुर पर चढ़ाई करता हूं जिससे विवश होकर अभयसिंह को अपनी सेना को बीकानेर से हटाना पड़ेगा परन्तु आप मेरे साथ विश्वासघात न कीजियेगा।" जोरावरसिंह की इच्छा स्वयं वख्तसिंह की सहायतार्थ जाने की थी, परन्तु अपनी अचानक आई बीमारी के कारण उन्हें रुक जाना पड़ा और वख्तावरसिंह को आठ हजार सेना के साथ भेजा। इसके बाद वख्तावरसिंह कापरड़ा पहुंचा तथा अभयसिंह बीसलपुर जहां युद्ध की तैयारियां हुई। परन्तु लड़ाई नहीं हुई और अभयसिंह ने अपने प्रधानों को भेजकर वख्तसिंह से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार मेड़ता वापस अभयसिंह को मिल गया और जालोर की मरम्मत के तीन लाख रुपये उसे वख्तसिंह को देने पड़े। इसके बाद वख्तसिंह नागोर चला गया जहां से उसने बीकानेर के सरदारों को सिरोपाव देकर विदा किया।[1]

---

1 दयालदास की ख्यात, जि. 2, पत्र 63-64। पाउलेट कृत गजेटियर आफ दी बीकानेर, पृ. 49 में भी इसका उल्लेख है।
'वीर विनोद' में भी इस घटना का वर्णन है—
'जोधपुर राज्य की ख्यात' में अक्षरशः ऐसा वर्णन नहीं मिलता है। इसमें जो वर्णन है वह इस प्रकार है—'भण्डारियों का उचित प्रबन्ध करने का कार्य वख्तसिंह को सौंपा गया था, पर उसने उनमें से कई के साथ बड़ा अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया जिससे अभयसिंह ने यह कार्य अपने हाथ में ले लिया। इस पर वख्तसिंह अपने भाई से नाराज हो गया और उसने श्रावणादि वि. सं. 1795 (चैत्रादि 1796 ई. सं. 1739) के आषाढ़ मास में मेड़ता पर चढ़ाई की। इस पर महाराजा ने जैतसिंह सूरसिंहोत (मेड़तिया) तथा बीरूंदावाले ठाकुर को उसे समझाने के लिये भेजा परन्तु उसने उनकी बात नहीं मानी और आगे बढ़ता हुआ भाद्र-

बीकानेर पर चढ़ाई करने में पिछली बार सफल न होने का ध्यान महाराजा अभयसिंह के दिल में बना ही रहा। वि. सं. 1797 (ई. स. 1740) में उसने फिर बीकानेर पर आक्रमण कर दिया। देशनोक पहुंचकर उसने करनीजी के दर्शन किये और फिर बीकानेर शहर में प्रवेश कर तीन पहर तक लूट की जिससे लगभग एक लाख रुपये की सम्पत्ति उसके हाथ लगी। नगर की लूट का समाचार सुनकर कुंवर गजसिंह एवं रावल रायसिंह कितने ही साथियों के साथ विरोधी दल का सामना करने के लिये तैयार हुए परन्तु महाराजा जोरावरसिंह ने उन सबको गढ़ में ही रखा। वे लोग गढ़ के ऊपर से शत्रु पर आक्रमण कर रहे थे। महाराजा के आदमियों ने सूरसागर, गिन्नाणी के तालाब पर अधिकार जमा रखा था। तोपों के गोलों की लगातार वर्षा से गढ़ का बहुत नुकसान हो रहा था। मुख्यत: 'शंभुवाण' नाम की एक तोप तो क्षण-क्षण पर अपनी भयंकरता का परिचय दे रही थी। उसको नष्ट करना आवश्यक था अतएव कुंवर गजसिंह (बीकानेर) की आज्ञानुसार एक पडिहार ने 'रामचंगी' तोप के सहारे उसका अंत कर दिया।[1] परन्तु युद्ध दिन-दिन उग्ररूप धारण कर रहा था। बख्तसिंह ने भी बीकानेर महाराजा से कहलाया कि 'मैं तन-धन दोनों से आपकी सहायता करने को तैयार हूं।' फिर बख्तसिंह की सलाह से ही बीकानेर वालों ने सवाई जयसिंह (जयपुर महाराजा) से भी सहायता करने को कहा। परन्तु जयसिंह को बख्तसिंह का पूरा विश्वास नहीं था जिससे उसने बख्तसिंह को कहलाया कि पहिले आप मेड़ता पर अधिकार कर लें फिर मैं निश्चय ही आऊंगा। यह सन्देश प्राप्त होते ही मेड़ता पर अधिकार कर बख्तसिंह ने अपनी सच्चाई का प्रमाण दे

पद मास में वह चांदेलाव पहुंचा। इसके सरदार लड़ाई करने के इच्छुक थे, पर महाराजा ने पत्र लिखकर उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। अनन्तर बख्तसिंह बिना लड़े ही वहां से नागोर चला गया। पांच सात दिन बाद महाराजा ने भी बीसलपुर से कूच किया। मार्गशीर्ष मास में गांव हिलोड़ी में बख्तसिंह महाराजा से मिला (जि. 1, पृ. 148-149)। इस वर्णन से भी दोनों भाइयों में मन-मुटाव होना सिद्ध होता है।

1 जोधपुर राज्य की ख्यात से पता चलता है कि 'शंभुवाण' तोप वहां नष्ट नहीं हुई थी वरन् अभयसिंह का घेरा उठाने के बाद पंचोली लाला तथा पुरोहित जग्गा उसको अपने साथ ले जा रहे थे, उस समय बैलों के थक जाने से उन्होंने उसे एक दूसरी तोप के साथ भूमि में गाड़ दिया। बाद में उसे खुदवाकर मंगवाया गया। (जि. 2, पृ. 150)

दिया।[1] अनन्तर जयसिंह ने 20,000 सेना के साथ राजामल खत्री को जोधपुर भेजा। वख्तसिंह उस समय मेड़ता के पास गांव जालोड़े में था तथा मेड़ता में अभयसिंह की तरफ से पंचोली मेहकरण दस हजार फौज के साथ था। राजामल के आने का समाचार मिलते ही उसने वख्तसिंह पर हमला किया और गंगवाणा नामक स्थान पर युद्ध हुआ परन्तु उसको विजय प्राप्त नहीं हुई। बाद में राजामल भी वख्तसिंह के साथ शामिल हो गया। जयसिंह ने स्वयं अब तक उस लड़ाई में कोई भाग नहीं लिया था। जब बार-बार आग्रह किया गया तब उसने सरदारों से इस विषय में सलाह ली। अधिकांश लोगों की तो यह राय थी कि अभयसिंह उसका दामाद है, दूसरे इस युद्ध में अपरिमित धन व्यय होगा, अतएव चढ़ाई करना उचित नहीं है। शिवसिंह(सीकर) ने कहा कि जोधपुर का बीकानेर पर अधिकार होना पड़ौसी राज्यों के लिये हानिकारक सिद्ध होगा इसलिये आरम्भ में ही कोई उपाय करना ठीक है। जयसिंह को यह सलाह उचित लगी और उसने तीन लाख सेना के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर ली।[2] अब महाराजा अभयसिंह को जोधपुर की रक्षा के लिये जोधपुर आना पड़ा। परन्तु उस समय तक जयसिंह रास्ते में ही था। उसका वास्तविक उद्देश्य जोधपुर पर अधिकार करना नहीं था। वह तो केवल अभयसिंह को बीकानेर से हटाना चाहता था और उससे कुछ धन वसूल कर स्वदेश लौट जाना चाहता था। अतः वह अभयसिंह से 21 लाख रुपये वसूल कर वापिस लौट गया।[3] इस धन में से 11 लाख के तो वे

---

1 जोधपुर राज्य की ख्यात से भी यह पता चलता है कि वख्तसिंह ने मेड़ता पर अधिकार कर लिया था और जयसिंह उससे वहीं जाकर मिला था। (जि. 2, पृ. 150)

2 जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जयसिंह ने यह सोचकर कि बीकानेर पर अधिकार कर लेने से अभयसिंह की शक्ति बढ़ जायेगी, तत्काल उसे लिखा कि बीकानेर पर से घेरा उठा ले। जब अभयसिंह ने ऐसा नहीं किया तो, उसने जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। (जि. 2, पृ. 149-50); दयालदास की ख्यात, जि. 2, पत्र 66-67। पाउलेट गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट, पृ. 51; जोधपुर राज्य की ख्यात में 20 लाख रुपया देना लिखा है और उससे पता चलता है कि भण्डारी रघुनाथ ने प्रयत्न कर यह सन्धि करवाई थी (जि. 2, पृ. 151); 'वीर विनोद' (भाग 2, पृ. 848) तथा वंशभास्कर (चतुर्थ भाग, पृ. 3300) में भी 20 लाख रुपये ही लिखा है।

3 वंश भास्कर से पता चलता है कि महाराणा जगतसिंह (दूसरा) 80,000 सेना के साथ जयसिंह की सहायता के लिये उदयपुर से रवाना

आभूषण थे जो जयसिंह ने अपनी पुत्री को अभयसिंह के साथ विवाह के अवसर पर दिये थे। परन्तु जयसिंह ने यह कहकर उन्हें स्वीकार कर लिया कि अब वह जोधपुर की निजी सम्पत्ति है अतएव इन्हें लेने में कोई दोष नहीं है।

1 बख्तसिंह और अभयसिंह के बिगड़ते हुए सम्बन्ध—महाराजा जयसिंह की जोधपुर पर चढ़ाई करने के कारण बख्तसिंह को यह आशा हो गई थी कि इससे उसका जोधपुर पर अधिकार करने का स्वार्थ सिद्ध होगा। परन्तु जब जयसिंह केवल धन लेकर लौट गया तब उसकी सारी आशा धूल में मिल गई और वह उसका विरोधी बन गया और उसने अपने भाई से मेल कर लिया और ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) पर चढ़ाई कर दी। परन्तु इस आक्रमण में उसे सफलता नहीं मिली। जयसिंह के पास 50,000 फौज थी, बख्तसिंह के पास केवल 5,000 फौज थी, फिर भी वह बड़ी बहादुरी से लड़ा, यहां तक कि वह दो तीन बार शत्रु-सेना के एक छोर से दूसरे छोर तक निकल गया। इस लड़ाई में जयसिंह की फौज के बहुत से आदमी काम आये, साथ ही बख्तसिंह के पक्ष के भी अधिकांश सैनिक मारे गये और केवल थोड़े से बच रहे। इस पर बख्तसिंह के सरदारों ने रण क्षेत्र का परित्याग करने को मजबूर किया। बख्तसिंह ने अपने भाई महाराजा अभयसिंह को सहायता करने के लिये लिखा पर वह नहीं आया क्योंकि पहले बख्तसिंह जयसिंह को जोधपुर चढ़ा लाया था। जब दोनों भाई पुष्कर में मिले, तो इस विषय को लेकर बख्तसिंह ने अपने भाई को बड़ा उपालम्भ दिया।

वंश भास्कर से भी यही पता चलता है कि अपनी तरफ से 4,700 सैनिकों के मारे जाने पर बख्तसिंह बचे हुए 300 आदमियों के साथ नागोर चला गया। कछवाहों के द्वारा ठाकुर गिरधारी की मूर्ति के हाथी आदि को लूटने का भी उसमें उल्लेख है और इस विजय का सारा श्रेय शाहपुरा के उम्मेदसिंह को दिया है।[1]

हो गया था और पुष्कर तक पहुंच गया था। वहां उसे यह खबर मिली कि अभयसिंह ने जयसिंह से संधि कर ली है। इस पर वह पुष्कर से ही उदयपुर लौट गया। (चतुर्थ भाग, पृ. 3298-3301)

'वीर विनोद' में लिखा है कि महाराणा ने जयसिंह द्वारा इस अवसर पर सहायता मांगने पर सलूंबर के रावत केसरसिंह को सेना के साथ भेज दिया (भाग 2, पृ. 1224)। उसी पुस्तक से यह पाया जाता है कि जयसिंह ने अन्य कितने ही राजाओं को भी अपनी सहायतार्थ बुलाया था।

1 वंश भास्कर, चतुर्थ भाग, पृ. 311-330

वि. सं. 1800 आश्विन सुदि 14 (ई. स. 1743 ता. 21 सितम्बर) को जयसिंह का स्वर्गवास हो गया और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र ईश्वरीसिंह हुआ। इसे उपयुक्त समय जानकर महाराजा अभयसिंह ने अपने सरदारों को भेजकर भिनाय, रामसर और पुष्कर पर अपना अधिकार करवा लिया और अभयसिंह स्वयं मेड़ता से चलकर गांव डांगावास में पहुंचा। वहीं पर वख्तसिंह भी नागोर से चलकर अपने भाई से मिल गया। दोनों भाइयों के डेरे अजमेर में हुए। कोटा का भट्ट गोविन्दराम भी 5,000 सेना के साथ छातड़ी गांव में उनसे मिल गया। इस प्रकार उनके पास 30,000 की फौज तैयार हो गई। उधर ईश्वरीसिंह ने भी इनके मुकावले के लिये सेना तैयार कर गांव ढाणी में डेरा किया। वख्तसिंह की इच्छा तो लड़ाई करने की थी परन्तु पुरोहित जगन्नाथ ने राजमल खत्री की मारफत वात ठहराकर दोनों पक्षों में मेल करा दिया। इससे नाराज होकर वख्तसिंह नागोर चला गया और ईश्वरीसिंह तथा महाराजा अभयसिंह में आपस में मेल हुआ। आनासागर के महलों में गोठ की गई। इसके वाद ईश्वरीसिंह तो जयपुर गया पर अभयसिंह का डेरा छातड़ी में ही रहा।[1]

2 **वीकानेर पर दूसरा आक्रमण**—वीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह के कोई सन्तान नहीं थी अत: उसकी मृत्यु पर उसके चाचा आनन्दसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के होते हुए भी वीकानेर के सरदारों ने वि. सं. 1803 में उसके छोटे भाई गजसिंह को जो सव भाइयों में अधिक वुद्धिमान था वीका-नेर की गद्दी पर वैठा दिया। अमरसिंह इससे वड़ा नाराज हुआ और वह अजमेर में अभयसिंह के रहते समय ही उसके पास चला गया। महाजन का ठाकुर भीमसिंह और भाद्रा का लालसिंह पहले से ही महाराजा के पास थे। इसलिये महाराजा अभयसिंह ने भीमसिंह, लालसिंह और अमरसिंह के साथ एक विशाल सेना वीकानेर पर चढ़ाई करने के लिये भेज दी।

वीकानेर वाले जोधपुर के पिछले हमलों से सतर्क रहने लगे थे अत: जव उन्होंने इस सेना के आवागमन का समाचार सुना तो वे भी अपनी सेना तैयार कर शत्रु का सामना करने के लिए रामसर के कुए पर आगये। कई महीनों तक दोनों सेना एक दूसरे के सामने खड़ी रही परन्तु छिटपुट हमलों के अतिरिक्त जमकर लड़ाई नहीं हुई। तव जोधपुर वालों ने कहलाया कि यदि भूमि के दो भाग कर दिये जाएं तो हम लौट सकते हैं। परन्तु गजसिंह ने यह उत्तर दिया कि 'हम तो तलवार की नोंक के वरावर भूमि भी नहीं देंगे और कल प्रात: तलवार के वल पर हमारी सन्धि की शर्तें तैयार होंगी।'

---

1 जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 2, पृ. 157; वीर विनोद, भाग 2, पृ. 848-849

वख्तसिंह ने वहां की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना ठीक न समझा और वहां जाना स्थगित कर दिया।[1]

दोनों भाइयों का गहरा द्वेष

पठानों के विरुद्ध बादशाह मु. शाह द्वारा बुलाये जाने पर, जब वख्तसिंह ने दिल्ली के लिये प्रस्थान किया तो अभयसिंह ने उसको ऐसा करने से रोका था। परन्तु वख्तसिंह ने उसका कहना नहीं माना इसलिए दोनों भाइयों में मनमुटाव हो गया। इसके बाद वख्तसिंह ने बीकानेर नरेश गजसिंह से भी मेल स्थापित कर लिया। गजसिंह को मिला लेने से वख्तसिंह की सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इस सम्बन्ध में उसने गजसिंह से भी कहा था कि 'आपके मिल जाने से हम एक और एक दो नहीं वरन् ग्यारह हो गये हैं।' अभयसिंह को जब इसकी खबर मिली तो मल्हारराव होल्कर को अपनी सहायता के लिए बुलाया और मरहठों की सहायता के बल पर अपने भाई वख्तसिंह पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसी समय जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह के प्रयत्नों द्वारा दोनों भाइयों में मेल करवा दिया गया। परन्तु दोनों का आन्तरिक द्वेष दूर नहीं हुआ।[2]

अभयसिंह की मृत्यु

वि. सं. 1806 (ई. स. 1749) में अभयसिंह बीमार हो गया और उसकी बीमारी बढ़ती गयी। अपना अन्तकाल निकट समझकर एक दिन अपने सरदारों को उसने अपने पास बुलाया और कहा कि मेरे भाई वख्तसिंह ने मेरे जीते-जी ही जोधपुर पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था। मेरी मृत्यु के बाद भी वह केवल नागोर से सन्तोष न होकर जोधपुर को मेरे पुत्र रामसिंह से छीन लेगा। रामसिंह कपूत और निर्बुद्धि है; इसलिए मुझे आशंका है कि तुम सब पलट जाओगे और उसके अधीन न रहोगे। इसलिए तुम्हारा इरादा यदि बख्तसिंह का साथ देने का हो तो वैसा कह दो, ताकि मैं बख्तसिंह को जोधपुर देकर रामसिंह का प्रवन्ध कर दूं। तब रीयां के उदावत शेरसिंह ने उत्तर दिया कि हमारे जैसे वीर राजपूतों के रहते हुए आपको ऐसे कातर वचन कहना शोभा नहीं देता। रामसिंह के कपूत होने पर भी हम उसका साथ देंगे। यह सुनकर महाराजा ने दूसरे सरदारों की राय जाननी चाही।

---

1 मिर्जा मुहम्मद हसन : मिरात-इ-अहमदी, जि. 2, पृ. 374-377; केम्पवेल कृत 'गजेटियर ऑफ द बाम्बे प्रेसिडेन्सी' में भी इसका संक्षिप्त उल्लेख है। भाग 1, खण्ड 1, पृ. 332

2 दयालदास की ख्यात, जि. 2, पत्र 73

अध्याय 2

शासन व्यवस्था एवं सैनिक प्रबन्ध

परिचय

इस काल की शासन व्यवस्था के बारे में बहुत कम सामग्री प्राप्त होती है। कुछ सनदें, फरमान एवं अभयसिंह द्वारा लिखित पत्र ही इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। इनके आधार पर ही अभयसिंह की शासन व्यवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है।

मुगलों की अधीनता स्वीकार करने से पूर्व मारवाड़ नरेश स्वतन्त्र थे और अन्य किसी भी शक्ति का हस्तक्षेप इन्हें मान्य नहीं था। परन्तु मुगलों की अधीनता ग्रहण करने से बहुदा उन्हें बादशाह की इच्छानुसार कार्य करने पड़ते थे[1] जिससे उनकी सार्वभौमिकता में कमी आ गई थी।

इस अध्याय में अभयसिंह के समय की शासन व्यवस्था और सेना संगठन का वर्णन दिया गया है।

मुगलों का प्रभाव

मुगलों का प्रभाव मारवाड़ के नरेशों पर भी पड़ा था। राव चन्द्रसेन सम्राट अकबर के समकालीन थे। सम्राट इनको अपने अधीन करना चाहता था। परन्तु चन्द्रसेन इसके लिए राजी न हुआ। उसका राज्यकाल मुगलों से लड़ते-लड़ते ही बीता। उदयसिंह की नीति इससे भिन्न रही। उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उसने शाही अधीनता स्वीकार करना ही उचित समझा। सम्राट ने इससे प्रसन्न होकर उसे राजा की पदवी से विभूषित किया।[2]

1583 ई. (वि. सं. 1640) तक मरवाड़ मुगलों की अधीनता में आ गया था। नरेशों की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी को शाही फरमान की प्राप्ति लेना आवश्यक होता था। नवीन नरेश को पैतृक राज्य की भूमि तो प्रायः प्राप्त हो जाती थी परन्तु पिता के मनसब नहीं प्राप्त होते थे।

---

1 देखिये अध्याय 1, पृ. 6

2 जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 1, पृ. 97

अधिकतर दिवंगत नरेशों के द्वारा नियुक्त युवराज ही राज्य के अधिकारी होते थे। परन्तु जब कभी-कभी उत्तराधिकार के लिये संघर्ष आरम्भ हो जाता तो मुगल हस्तक्षेप भी होता था। विजेता या मुगल बादशाह का कृपा पात्र ही अधिकार प्राप्त करने में सफल होता था। मोटा राजा उदयसिंह की मृत्यु पर उसके छठे पुत्र को इसी कृपा के द्वारा अधिकारी न होते हुए भी राज्य प्राप्त हुआ। मारवाड़ के शासक गजसिंह ने अपने पुत्र जसवन्तसिंह को ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह की उपेक्षा कर अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इस कार्य में उसे बादशाह की अनुमति प्राप्त थी।

सम्राट अकबर ने नरेशों के पदारूढ़ होते समय (यदि वे शाही दरबार में उपस्थित होते थे) अपने हाथों से तिलक करने की प्रथा चलाई थी। महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली में बादशाह मो. शाह ने स्वयं अपने हाथ से महाराजा अभयसिंह का राज्याभिषेक किया था तथा कई बहुमूल्य उपहारों के साथ नागोर की सनद भी दी थी।[1]

इस कारण मुगलों के प्रभाव से मारवाड़ के नरेश उनके मनसबदार बन गये।[2] मनसबदार होने के कारण ये सम्राट की आवश्यकता के अनुसार उसे सैनिक सेवाएं प्रदान करते थे। इसके बदले में मुगल बादशाह नरेशों को पद (जात व सवार) दिया करते थे। मुगलों के मनसबदार होने के पश्चात् भी नरेशों की आन्तरिक शासन व्यवस्था में विशेष अन्तर नहीं आया था। अपनी प्रजा के सुख-दुख के प्रति नरेश हमेशा जागरूक रहते थे। यद्यपि बादशाह की आज्ञा से नरेशों को देश से दूर भी रहना पड़ता था, परन्तु अपनी अनुपस्थिति में शासन कार्य को उचित रूप से चलाने के लिये इन्होंने कार्यकारिणी की नियुक्ति की थी और शासन का कार्य नरेशों के प्रतिनिधि चलाते थे। भण्डारी रघुनाथसिंह ने महाराजा अभयसिंह की अनुपस्थिति में कुछ समय तक मारवाड़ का शासन भी किया था, जैसा कि इस दोहे से प्रकट होता है—

'करोज द्रव्य लूटावियो होदा ऊपर हाथ,
अभो दिल्ली रो पातसा, राजा तूं रघुनाथ'।

(अर्थात् जिसने हाथों से द्रव्य लुटाया हो और हाथी के हौदे पर जिसके हाथ रहे वो महाराजा अभयसिंह तो दिल्ली के बादशाह जैसा है और हे रघुनाथ सिंह, तू भी तो राजा है।)

शासन के उद्देश्य

शासन एवं शासित का आपस में राजनैतिक सम्बन्ध होता है। वही शासक

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 129-149
2 पूरे विवरण के लिये आगे देखिये।

था, जिसे अधिकांश मारवाड़ निवासी भगवान का रूप मानते थे । सैद्धान्तिक रूप में वह सार्वभौम शासक, राज्य का सर्वोत्तम अधिकारी, सेना का सर्वोच्च कमाण्डर और राज्य का श्रेष्ठ पदाधिकारी भी माना जाता था । विधि अधिकार उसके सर्वश्रेष्ठ थे । वह न्यायदायक था इसलिये सभी प्रकार के मुकदमे अधिकतर वह स्वयं ही करता था । जनता का मांई-बाप वही माना जाता था । शासन को कुशलतापूर्वक चलाने में वह अपने सहयोगियों की मदद भी लेता था । ये अधिकारी महाराजा के प्रति उत्तरदायी एवं उसके सेवक होते थे । इन अधिकारियों से विभिन्न विषयों पर महाराजा सलाह किया करता था । अधिकारियों पर महाराजा का नियंत्रण होते हुए भी वे अपने-अपने विभागों में स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे ।

1 शासन व्यवस्था का विवरण इन शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

1 मुगल बादशाह तथा मारवाड़ के नरेश के सम्बन्ध

2 जोधपुर राज्य का आन्तरिक शासन प्रबन्ध

3 जिलों का शासन

मुगल सम्राट एवं नरेश के मध्य वकील द्वारा प्रशासनिक सम्बन्ध—मुगल सम्राटों का सम्बन्ध सदैव मारवाड़ से किसी-न-किसी भांति बना रहता था । अतः मारवाड़ नरेश और सम्राट के बीच सम्बन्ध वकीलों के द्वारा रहता था ।[1] इनमें से एक वकील प्रान्तीय शासक के दरबार में रहता था और दूसरा शाही दरबार में रहता था । ये वकील महाराजा के प्रतिनिधि थे । शाही आज्ञाओं को अपने स्वामी तक पहुंचाने के ये यन्त्र थे । परिस्थितियों के अनुसार ये शाही आज्ञाओं के प्रचलित होने से पूर्व अपने स्वामी के हितों के प्रति सावधानी रखते थे । साथ ही दरबार-ए-आम एवं दरबार-ए-खास में हुए कार्यों एवं दैनिक सूचनाओं से भी अपने स्वामी को अवगत कराते रहते थे । वकील साथ ही यह भी सुझाव देते रहते थे कि किस प्रकार शाही आदेशों को कार्यान्वित करना होगा । वकील के पद पर उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था जो अत्यन्त बुद्धिमान और राजा के भरोसे का व्यक्ति होता था । राज्य और साम्राज्य के आपसी सम्बन्धों का निर्वाह वकील पर ही निर्भर करता था । भण्डारी अमरसिंह जो भण्डारी खींवसिंह का पुत्र था, महाराजा अभयसिंह का दीवान भी था और अहमदाबाद युद्ध के समय में वह दिल्ली में बादशाह मो. शाह के पास अभयसिंह के वकील के रूप में भी रहा था । यह बहुत बुद्धिमान, चतुर और योग्य व्यक्ति था । इसी ने महाराजा के

---

1 पी. सरन : डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ नॉन-पर्शियन सोर्सेज फार मिडिवल इन्डियन हिस्ट्री, पृ. 225

द्वारा सर बुलन्द खां को परास्त करने का समाचार बादशाह को दिया था।[1] जहां तक सम्राट का प्रश्न था, उसकी ओर से उसके प्रान्तीय अधिकारी ही साम्राज्य के हित की रक्षा करते थे।

शाही हस्तक्षेप—वस्तुओं के मूल्य को नियंत्रित करने के उद्देश्य से कभी-कभी सम्राट हस्तक्षेप करता था। यदि कोई कर शाही प्रदेशों में वसूल नहीं किया जाता तो रजवाड़ों से भी यही आशा की जाती थी कि वह कर वहां भी अर्जित न हो। यद्यपि मारवाड़ के नरेश शाही आदेशों का विरोध परोक्ष रूप से नहीं करते थे परन्तु सम्राट की तुष्टि के लिये सरकारी कोष में कुछ भेंट भेज देते थे, इसे 'पेशकशी' कहा जाता था।

2 जोधपुर राज्य का आन्तरिक शासन प्रबन्ध—

महाराजा—सिंहासन पर बैठने के पश्चात् नये शासक के नाम का 'अमलदस्तूर' उसके राज्य में होता था जिससे उस शासक के नाम की विधिवत कार्यवाही राज्य में प्रारम्भ होने लगती थी।

शासक की दोहरी जिम्मेवारी होती थी। एक ओर उसे मुगल साम्राज्य की सेवाओं का पूरा ख्याल रखना पड़ता था तथा दूसरी ओर अपने राज्य का प्रबन्ध करना पड़ता था।

शासक अपने राज्य के आन्तरिक प्रशासन में स्वतंत्र था। राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति करना, अधिकार बांटना, पुरस्कृत करना, दण्ड देना आदि सभी कुछ नरेश के अधिकार में रहता था।

राज्य व्यवस्था को चलाने के लिये अनेक अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। इन अधिकारियों के अधिकार और कर्त्तव्यों का कुछ अनुमान निम्नलिखित विवरण से मिलता है।

सामन्त—मारवाड़ के विशिष्ट जागीरदारों को सामन्त कहा जाता था। सामन्त महाराजा के आधीन होते थे। राज्य का अधिकांश भाग बन्धुओं एवं जागीरदारों में विभाजित था। जागीरदार को जब जागीर प्रदान की जाती थी तो वह महाराजा को इस उपलक्ष में भेंट प्रस्तुत करता था। इन सामन्तों के लिये मारवाड़ नरेश वैसे ही पूज्य थे जैसे कि मुगल सम्राट इन नरेशों के लिए। जागीरदार के देहावसान पर उसके परिवार वालों को जब्ती देने को बाध्य होना पड़ता था जिसे उत्तराधिकार कर की उपमा दी जा सकती है।

मारवाड़ के प्रमुख अधिकारी तीन श्रेणी में बांटे जा सकते थे—

(क) शाही घराने के सदस्य जिन्हें 'राजवीस' के नाम से पुकारते थे

(ख) सामन्त और सरदार

(ग) महत्वपूर्ण अफसर या 'मुतसद्दी'

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 269

सामन्तों की भी चार श्रेणियां थीं[1]—

(अ) 'दस सरयत'[2]—जो सभी राठौड़ होते थे और दरबार में प्रथम स्थानों पर बैठते थे और दोहरी ताजीम[3] प्राप्त करते थे। उन्हें 'हथ का कुरब'[4] भी प्राप्त था।

(आ) राजाओं के उत्तराधिकारी जो राव जोधा[5] (जोधपुर के निर्माता) से पहले थे उन्हें दरबार में नरेश के दाई ओर बैठाया जाता था और जो राव जोधा[6] के उत्तराधिकारी थे उन्हें बाई ओर।[7]

(इ) तीसरी श्रेणी में वे सरदार थे जिन्हें 'हाथ का कुरब' प्राप्त था। इनमें राठौड़, गनायत और अन्य जाति के सदस्य व अधिकारी होते थे जो इस श्रेणी पर पहुंचते थे। इस श्रेणी के सरदारों की दो उपश्रेणियां थीं—(क) वे जिन्हें दोहरी ताजीम मिली हुई थी और (ख) वे जिन्हें इकहरी ताजीम मिली हुई थी।[8]

(ई) इस श्रेणी में वे थे जिन्हें इकहरी ताजीम का सम्मान था।

इन सामन्तों द्वारा महाराजा को जो धनराशि या अनुदान उनके हिस्से का दिया जाता था वह उनकी आय के आधार पर निर्धारित होता था।

---

1 एलफ्रेड याअेल : चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज इन राजपूताना, पृ. 208

2 यह थे कुम्पावत, करनावत, चम्पावत, जेतावत करमसोत और मेड़तिया। सरियत का अर्थ पहले स्थान से है। देखिये हरदयाल : तवारीख जागीरान, पृ. 3, 51

3 महाराजा उनके आने व जाने पर खड़ा होता था। देखिये हरदयाल : तवारीख जागीरान, पृ. 4

4 इसके अनुसार जब इस श्रेणी का सामन्त दरबार में आता था उस समय महाराजा उठता था और सामन्त द्वारा अपनी तलवार महाराजा के सामने रखकर, झुककर महाराजा के वस्त्र को छूना पड़ता था। महाराजा सामन्त के कन्धे पर हाथ रखता था और उसकी छाती तक ले जाता था। हरदयाल : तवारीख जागीरान, पृ. 4, देखिए रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 632

5 इसमें मुख्य जातियां थीं चांपावत और कुम्पावत।

6 इसमें मेड़तिया, उदावत और जोधा इत्यादि थे।

7 फाईल नं. 70, महाराजा, रावराजा और सरदार इत्यादि उनकी जागीर (जोधपुर रिकार्ड)।

8 इसमें महाराजा केवल सरदार के दरबार में आने पर ही खड़ा होता था।

उनके द्वारा घोड़ों की संख्या व पैदल भी उनकी भूमि और उनके पद के अनुसार निश्चित होता था।

इन सामन्तों में विभिन्नता होते हुए भी नरेश से गांव अथवा पट्टा पाने के अधिकारी सब समान रूप से होते थे।[1]

सामन्त प्रथा का प्रचलन मारवाड़ में पुरातन काल से था फिर भी इसकी रूपरेखा पर मुगल प्रभाव की छाप इस समय में अधिक थी और मनसबदारी प्रथा से काफी मिलती जुलती थी। अन्तर केवल इतना था कि मुगल मनसबदार अपने पद के लिये सम्राट के आश्रित थे, जबकि अनेक राजपूत सामन्त या तो राजपरिवार से सम्बन्धित होते थे अथवा नरेश के कृपा पात्र होते थे या फिर वे अपनी जागीरें एवं ठिकाने अपने ही बाहुबल से प्राप्त कर लेते थे। अतः वे महाराजा के आश्रित न होकर उनके सहयोगी थे, फिर भी वे महाराजा के संरक्षण में रहना उचित समझते थे।

मनसबदारी—मुगल पद्धति के अनुसार मनसब प्रदान करने का अधिकार केवल बादशाह को ही होता था। मारवाड़ नरेश अपने आन्तरिक विषयों में स्वतन्त्र होते थे। दूसरी ओर मुगल सम्राट का आधिपत्य स्वीकार करने के फलस्वरूप उनके मनसबदार होते थे तथा उनकी आज्ञा-पालन करने के लिये बाध्य होते थे। अतः इनकी भी गणना मुगल मनसबदारों में होती थी।

सर्वप्रथम मनसबदारी प्रथा का प्रचलन अकबर ने किया। उसने पराजित राजाओं को उन्हीं के राज्यों को सौंप इन नरेशों को मनसबदार के पद से सुशोभित किया। अकबर के अन्तिम राज्य वर्षों में मनसबदारी प्रथा में सवार पद का आगमन हो चुका था।[2] यह मनसबदार के अतिरिक्त पद का द्योतक था। बादशाह मोहम्मदशाह ने महाराजा अभयसिंह को राजराजेश्वर[3] की उपाधि और 7 हजारी मनसब भी प्रदान की थी।[4] जिस शासक का जितना बड़ा मनसब होता था वह मुगल साम्राज्य का उतना ही बड़ा पदाधिकारी

---

1 नरेशों द्वारा इन व्यक्तियों को गांव के पट्टे दिए जाते थे। देखिए मुंशी हरदयाल कृत तवारीख जागीरदारान, राज-मारवाड़।

2 डा. बी. पी. सक्सेना : हिस्ट्री आफ शाहजहां, पृ. 284

3 अभयोदय, सर्ग 6, श्लोक 11-12

4 इर्विन कृत 'लेटर मुगल्स' के अनुसार अजीतसिंह के मारे जाने के बाद उनके पुत्रों में गद्दी के लिये झगड़ा हुआ। ई. स. 1724 ता. 25 जुलाई (वि. सं. 1781 भाद्रपद वदि 1) को सम्सामुद्दौला के बीच पड़ने पर बादशाह ने अभयसिंह को 'राजराजेश्वर' का खिताब तथा सात हजारी मनसब देने के साथ ही जोधपुर पर अधिकार करने की आज्ञा दी (जि. 2, पृ. 115)।

माना जाता था। मनसव का मुख्य सम्बन्ध सैनिक शक्ति से था क्योंकि मनसबदार को अपने मनसब के अनुसार नियत संख्या में सेना रखनी पड़ती थी। मनसब और मनसबदार मुगलकालीन भारत के न केवल सैनिक व्यवस्था के अपितु राजनीति और प्रशासन के मुख्य आधार रहे हैं।

जागीरदार—राठौड़ों के आदि पुरुष सीहाजी अपनी शक्ति के आधार पर ही मारवाड़ के कुछ भाग में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ था। बाद में उसके भाई बन्धुओं ने भी मारवाड़ के अन्य भागों पर अधिकार कर लिया था।[1] जैसे आस्थान के भ्राता सोनग ने ईडर पर, अज ने ओखमण्डल पर अधिकार कर राठौड़ों की शक्ति को दृढ़ बनाया।[2] इस प्रकार धीरे-धीरे इन लोगों ने जोधपुर के अन्य भागों पर अधिकार कर लिया और विजय किये प्रदेशों का प्रबन्ध अपने सरदारों से करवाने लगे। यह जागीरदारी प्रथा का आरम्भिक रूप था। इन जागीरदारों से नरेश समय पर आवश्यकता पड़ने पर सहायता लेते थे और साथ ही उन प्रदेशों की शासन व्यवस्था के उत्तरदायित्व से भी मुक्त रहते थे जो कि जागीरदारों के आधीन होते थे। ये सरदार राजा की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों के समान होते थे तथा नरेश के सलाहकार भी होते थे लेकिन शासन कार्य राजा के नाम पर ही चलता था।[3] युद्ध काल में ये अपने सैनिकों सहित महाराजा को सहायता करते थे। उस समय मारवाड़ में जागीर शब्द का प्रचलन नहीं था अतः जागीर को सनद के रूप में प्रदान किया जाता था। इसे ठिकाना, गांव देना या पट्टा देना कहते थे।[4]

प्रधान[5] —यह राज्य का प्रधानमन्त्री होता था। व्यवहार में यह महाराजा की प्रतिछाया माना जाता था।[6] राज्य की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था उसके अधिकार में होती थी। वह राजनीति और राज्य व्यवस्था में निपुण होता था। साथ ही राजा का विश्वासपात्र तथा प्रभावशाली व्यक्ति होता था। प्रधानमन्त्री का पद राज्य में सबसे बड़ा पद माना जाता था तथा इस पद की चाकरी की एवज में शासक की ओर से जागीर का बड़ा पट्टा

---

1 वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 42
2 वही, पृ. 44
3 देखिये खास रुक्का परवाना नं. 4, पृ. 16, ब्याह बही नं. 1, पृ. 196
4 पी. सरन : डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ नोन-परशियन सोरसेज आफ मिडिवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 224
5 महाराजा अभयसिंह के समय के प्रधान, दीवान इत्यादि का विवरण संलग्न परिशिष्ट में देखिये।
6 जे. एन. सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ. 20

दिया जाता था। राजा की अनुपस्थिति में सारा कार्य-भार उसी पर होता था। राजा के आदेश पर सन्धि-विग्रह, चढ़ाई, मुगल दरबार में उपस्थित होना आदि सभी कार्य प्रधानमन्त्री करता था। महाराजा अभयसिंह के समय में प्रधान भण्डारी गिरधारी पंचोली, चम्पावत महासिंह, भण्डारी अमरसिंह और भगवान दौलात रहे थे।[1]

प्रधान के सहयोगी—प्रधान के विस्तृत कार्यों में सहयोग देने के उद्देश्य से कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति होती थी। उनके माध्यम द्वारा महाराजा अपनी आज्ञाओं को प्रधान तक पहुंचाया करता था। विशेष अवसरों पर मन्त्रियों के माध्यम द्वारा साधारण आदेश प्रचलित होता था, साथ ही उसी विषय का एक पत्र महाराजा प्रधान को भी लिख देता था। इस प्रकार दो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचालित उनकी आज्ञाओं में त्रुटि का स्थान नगण्य हो जाता था।

दीवान—इस पद का प्रारम्भ मुगलों के प्रभाव के कारण हुआ था।[2] यह राज्य का राजस्व संबंधी सबसे बड़ा अधिकारी होता था। राजस्व की वसूली, उसका हिसाब-किताब, अधीनस्थ कर्मचारियों की निगरानी का कार्य उसके जिम्मे होता था। उसे पर्याप्त दिवानी और फौजदारी अधिकार भी होते थे। वह परगने के हाकिमों, कानूंगो आदि से सीधा सम्पर्क रखता था। जमीन की किस्म, पैदावार, जागीर व खालसे के गांवों की पूरी जानकारी इसे होती थी।[3] वह परगनों के हाकिमों की नियुक्ति और उनके नाम की सिफारिश करता था। हर दीवान के बदलने पर बहुत से हाकिमों को बदलना पड़ता था। खींवसिंह भण्डारी महाराजा अजीतसिंह और अभयसिंह के समय में जोधपुर का दीवान रहा था। दीवानगी भण्डारी रघुनाथ को भी दी थी और उठने का कुरब भी दिया था। जब भण्डारी रघुनाथ को सरदारों को खुश करने के लिए महाराजा ने उसे मथुरा के डेरे में नजरबन्द कर दिया

---

1 अभयसिंह की ख्यात, पृ. 5, 35

2 जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 2, पृ. 89

3 नैणसी की मारवाड़ रा परगनां री विगत से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दीवान प्रशासन तथा युद्ध कार्य में भी सिद्धहस्त होता था। वह जनता के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करता था तथा परिस्थितियों के अनुसार शासक को निवेदन कर कर की वसूली में रियायत भी करवा सकता था। देखिए जे. एन. सरकार की पुस्तक मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ. 27-29। इसमें दीवान के कार्य और अधिकार का वर्णन दिया हुआ है।

तब वहां दीवानगी का काम पंचोली रामकिशन बालकिशन से लिया।[1] दीवान के सहायक दो 'नायब दीवान' होते थे—एक तो खजाने को संभालता तथा दूसरा 'हजूर दफ्तर' को जो किले के फतह पोल में था।[2]

हाकिम—प्रत्येक परगने में एक हाकिम नियुक्त किया जाता था जो राजस्व वसूली और राज व्यवस्था आदि कार्य देखता था। वह कस्बे के दुर्ग में आवश्यक साज-सामान सहित रहता था।[3] वह अपना दीवान लगाता था तथा मुकदमे भी सुनता था। उसे थानेदार भी कहा जाता था क्योंकि परगने की सुरक्षा प्रबन्ध भी उसके जिम्मे होता था। आवश्यकता पड़ने पर उसे आक्रांताओं से मुकाबला भी करना पड़ता था। जोधपुर की हाकमी भण्डारी अनोपसिंह को और मेड़ता की हाकमी भण्डारी मनरूप पोपसी रासावत को दी थी।[4]

मुसाहिबों का स्थान शासन प्रबन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण था क्योंकि वे महाराजा के अधिक नजदीक थे और बहुदा दीवान का स्थान भी गौण हो जाता था। पंचोली रामकिशन को नागोर का सूबेदार बनाया था और भण्डारी गिरदास भी सूबेदार रहा था।[5]

फौजबक्सी—दीवान के अधीन फौजबक्सी का ओहदा था। इस अधिकारी द्वारा एक रजिस्टर रखना पड़ता था जिसमें सैनिक कर्मचारियों के नाम, ओहदे, वेतन इत्यादि का विवरण होता था। सैनिक विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते वह दरबार में महाराजा के दाईं ओर खड़ा होता था। वह उसी का ही काम था कि वह शाही महल में सन्तरियों की नियुक्ति करे। उस के द्वारा 'खबर नवीस' और जासूस, परगनों, किलों और पड़ौसी राज्यों में भेजे जाते थे।

कानूगो—प्रत्येक परगने में कानूगो रहते थे। जमीन की पैमाइश, उसकी किस्म, लगान, आमदनी आदि का ब्यौरा इनके पास रहता था। राजस्व में इसका एक महत्वपूर्ण स्थान था। कानूगो प्राय: ओसवाल अथवा पंचोली जाति के होते थे। इनका यह पद पुश्तैनी होता था। जमीन के जिस भाग का ब्यौरा जिसे रखना होता था वह उसके पास वंश परम्परा से रहता था।

इन प्रमुख पदों के अतिरिक्त अन्य कई छोटे बड़े पद होते थे जैसे हुजदार, शिकदार, पोतदार, चौकी नवीस आदि।

---

1 अभयसिंह की ख्यात, पृ. 29-30
2 मुन्दियार की ख्यात अफ अफ 22-23, 115, वस्ता नं. 40
3 मारवाड़ प्रेसी, पृ. 114
4 अभयसिंह की ख्यात, पृ. 34
5 वही, पृ. 38

होता था। उसका निर्णय अन्तिम निर्णय होता था। मनु एवं याज्ञवल्क्य की स्मृतियां महाराजा के निर्णय का आधार थीं।

हिन्दुओं पर स्मृति के आदेश एवं मुसलमानों पर 'शरह' की धाराएँ रोपित करने का प्रचलन था। 'स्मृति' के अनुसार जातीय परम्परा को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था। वर्तमान समय की तुलना में न्याय अपूर्ण था। मृत्युदण्ड देने का अधिकार केवल महाराजा को ही था। न्यायव्यवस्था के दो विभाग थे—सदर फौजदारी और सदर दीवानी। अपराधों के दण्ड स्वरूप आंखें निकालना, अंग-भंग करना, बिच्छु एवं सर्पो द्वारा अपराधियों को कटवाना सामान्य रूप से प्रचलित थे।

1 **देवस्थान की कचहरी**—यह मन्दिरों के आय व्यय सम्बन्धी झगड़ों का निराकरण करती थी।[1]

राज्य कर व्यवस्था

राठौड़ नरेश मारवाड़ के स्थायी शासक थे। अतः प्रजा का शोषण उनका उद्देश्य नहीं था। इसी कारण जनता पर अधिक कर इस समय नहीं थे। प्रजा की समृद्धि ही राजा की समृद्धि थी।

1 **जागीरदारों पर लगने वाले राजकीय कर : रेख**—यह एक सैनिक कर था। यह उपज के 1/8 के रूप में लिया जाता था तथा 1000) रु. की रेख पर एक घोड़ा लिया जाता था। सर्व प्रथम जागीरदारों से अकबर ने रेख के रूप में रुपये वसूल करने की प्रथा को चलाया था जिसके फलस्वरूप सवाई राजा शूरसिंह के समय से ही जागीरदारों के पट्टों में उनके गांव की रेख लिखी जाने लगी। जागीरदारों पर लगने वाला यह (रेख) प्रमुख कर था।[1] यद्यपि रेख का रुपया मुत्सद्दियों और खवास पासवानों से भी लिया जाता था तथापि उसकी शरह भिन्न थी। रेख वास्तव में भूमि कर का अन्य रूप था तथा चौथ का अन्य रूप था जो कि देश में शान्ति बनाये रखने के उपलक्ष में लिया जाता था। इसे 'रखवाली' भी कहा जाता था।[2] जिन जागीरदारों को मारवाड़ से बाहर युद्धों में भाग लेना पड़ता था उनसे 'रेख' के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था।

2 **पेशकशी**—पेशकशी वह रकम होती थी जो किसी जागीरदार के लड़के को जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् नजराने के रूप में देनी पड़ती थी।

---

1 पी. सरन : डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ नोन-परशियन सोरसेज ऑफ मिडिवल इन्डियन हिस्ट्री, पृ. 228

2 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 286; वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 628

यह रिवाज भी पहले अकबर ने चलाया था। इसके अनुसार किसी भी जागीरदार और मनसबदार की मृत्यु पर उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी और फिर लड़के द्वारा एक बड़ी रकम 'पेशकशी' के रूप में देने पर वे सब इनायत के रूप में लौटाई जाती थी। महाराजा अजीतसिंह ने इसका नाम हुक्मनामा रख दिया था।

3 चाकरी[1]—युद्ध में महाराजा का साथ देने के लिये जागीरदारों द्वारा दी जाने वाली सैनिक सहायता 'चाकरी' कहलाती थी। इस युग में किसी शक्तिशाली सत्ता के न होने के कारण छोटे-बड़े सब प्रकार के भूस्वामी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये और उनके प्रसार के लिये युद्धों में लगे रहते थे। नरेश अपने पास बहुत विशाल सेना नहीं रखते थे वरन् उनकी आज्ञा मिलते ही जागीरदार दलबल सहित सेना में आ जाते थे। बाद में चाकरी के भी नियम बना दिए गए। उसके अनुसार जागीर की वार्षिक आमदनी के आधार पर चाकरी की रकम देना होता था। जैसे एक हजार की वार्षिक आय पर एक घुड़सवार, साढ़े सात सौ की आय पर एक शुतर-सवार और पांच सौ की आय पर एक पैदल रखना निश्चित हुआ। परन्तु कुछ ही समय में जागीरदारों द्वारा नियत की जाने वाली जमेयत के आदमियों और वाहनों की दशा ऐसी शोचनीय हो गई कि वे केवल समाचार लाने और ले जाने या ऐसे ही छोटे-छोटे काम करने लायक रह गये।[2]

मारवाड़ नरेश द्वारा दी जाने वाली ताजीमों और सरोपावों का वर्णन

ये दो प्रकार की होती थीं—इकहरी (इकेवड़ी) और दोहरी (दोवड़ी)। इकेवड़ी ताजीम पाने वाले का महाराजा के सामने उपस्थित होते समय और जिसे दोहरी ताजीम मिलती थी उसके हाजिर होते समय और लौटते समय महाराजा खड़ा होकर उसका अभिवादन करता था।[3]

1 **बांह-पसाव**[4]—यह एक प्रकार की ताजीम थी। जिसे यह ताजीम मिलती थी वह महाराजा के सामने उपस्थित होकर उसके पैरों के पास अपनी तलवार रखकर घुटने या अचकन के पल्ले को छूता और महाराजा उसके कन्धे पर हाथ रख देता था।

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 3

2 इसका मुख्य कारण जागीरदारों का कम वेतन पर आदमियों का भरती करना था।

3 वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 632

4 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 361 और वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 632

2 **हाथ का कुरब**[1]—यह ताजीम जिन्हें मिलती थी उसका महाराजा का घुटना छूने पर महाराजा उसके कन्धे पर हाथ लगाकर अपने हाथ को उसकी छाती तक ले जाता था।

3 **सिर का कुरब**[2]—'कुरब सिर साटे मिलता है दाम साटे नहीं।' यह कुछ चुने हुए सरदारों को ही प्राप्त होता था। ऐसे सरदार जिन्हें यह ताजीम मिलती थी वे दरबार के समय अन्य सरदारों से ऊपर बैठते थे।

4 **हाथी सरोपाव**—जिसको यह सरोपाव मिलता था उसे राज्य से कपड़े इत्यादि सब मिलाकर 780/- रु. दिये जाते थे। विवाह के मौके पर 849/- रु. दिये जाते थे।

5 **असि सरोपाव** - इनके लिए साधारणतया 290/- रु. और विवाह के मौके पर 340/- रु. मिलते थे।[3]

6 **जवाहर मोतीकड़ा**—इसमें तीन श्रेणियां होती थीं। प्रथम श्रेणी वालों को 121/- रु., द्वितीय श्रेणी वालों को 85/- रु. और तृतीय श्रेणी वालों को 65/- रु. दिये जाते थे।[4]

7 **पालकी सरोपाव**—जिसे सरोपाव दिया जाता था उसे 472/- रु. दिये जाते थे। विवाह के अवसर पर इसकी रकम 553/- रु. हो जाती थी।

8 **सादा सरोपाव**—इसके प्रथम दर्जे में 140/- रु., विवाह के समय 240/- रु., दूसरे दर्जे में 100/- रु. और तीसरे दर्जे में 71/- रु. दिये जाते थे।

9 **सोना**—उस समय मारवाड़ में प्रत्येक व्यक्ति को सोना पैर में पहिनने का अधिकार नहीं था। जिस व्यक्ति को राज्य की तरफ से यह अधिकार होता था वही इसका उपयोग पैर में कर सकता था अन्य नहीं। इसके अतिरिक्त कंठी, दुपट्टा सरोपाव, कड़ा मोती, दुशाला सरोपाव भी दिये जाते थे।

10 **कौमी दस्तूर**—महाराजा की सेवा में आए हुए सरदारों को दिये गये इनामों का विवरण (जाति के अनुसार) कौमी दस्तूर कहलाता था।[6] उस समय सरदारों द्वारा महाराजा को भेंट एवं उपहार की पद्धति का सामान्य प्रचलन था।

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 281; वि. ना. रेऊ : मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 632

2 वही, पृ. 206 और वही

3 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 280

4 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 8

5 पी. सरन : डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ नोन-परशियन सोरसेज ऑफ मिडिवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 224

11 किले का प्रबन्ध—किलों की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध रखा जाता था। इनमें खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में इकट्ठी रखी जाती थी। रात्रि में किसी नए व्यक्ति को किले में प्रवेश नहीं करने देते थे और यदि वह जबरन विश्राम करना चाहता तो उसे जान से मार डालने की राज्य की तरफ से आज्ञा थी।

जिलों का शासन प्रबन्ध

1 शिकदार—मारवाड़ में जिलों के शासन को संभालने वाले शिकदार होते थे। संभवतः शेरशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करने के उपरान्त से ही यह पद यहां परम्परा से चल रहा था। महाराजा के आदेशों को जिलों में कार्यान्वित करना शिकदार का प्रमुख कार्य था। शिकदार तीन महत्त्वपूर्ण विषयों के संरक्षक होते थे—

1 प्रशासनिक, 2 न्यायिक, 3 सैनिक।

शिकदार नागरिकों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। न्यायाधीश होने के नाते वह न्याय का स्वामी था। जिलों में होने वाले उपद्रवों के दमन का उत्तरदायित्व शिकदार पर होता था। परन्तु मृत्युदण्ड देना उसके अधिकार के बाहर था। इसके लिये राजा की अनुमति आवश्यक होती थी। यद्यपि जिलों के पास अधिक सैनिक शक्ति नहीं रहती थी फिर भी जो थोड़ी बहुत सुरक्षा के लिये होती थी उसका स्वामी भी शिकदार होता था। शिकदार जिलेवासियों के नागरिक अधिकारों का रक्षक था परन्तु अपने अधीन अधिकारियों की नियुक्ति या उनको पद से हटाने का अधिकार उसके पास नहीं था। इन कार्यों को नरेश करता था।

2 स्थानीय प्रशासन—राजधानी में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने का दायित्व कोतवाल पर था। राज्य को चोर, लुटेरों से सुरक्षित रखना, स्थानीय झगड़ों पर नियन्त्रण रखना कोतवाल के कार्य होते थे। यह पद सम्माननीय समझा जाता था।

3 परगनों का शासन—राज्य इस समय परगनों में और परगने गांवों में बंटे हुए थे। गांवों का आन्तरिक प्रशासन व प्रबन्ध पंचायतों के आधीन थे। पंचायतें गांव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा निर्मित होती थीं। पंचायतों को गांवों में वही अधिकार प्राप्त थे जो शिकदार को जिलों में थे। पंचायत के सरपंच पटेल के उपनाम से पुकारे जाते थे। गांवों में पटेल का मत ही अन्तिम निर्णय होता था।

इस प्रकार इस समय की शासन व्यवस्था का अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि अपनी कुछ स्थानीय विशेषताओं के होते हुए भी धीरे-धीरे सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था की प्रणाली मुगल साम्राज्य के

प्रशासनिक ढांचे से पूरी तरह प्रभावित हो चुकी थी। इसका अनुमान पदों के नामों और प्रशासनिक शब्दावली से ही लगाया जा सकता है। मुगल काल में भारत के सभी राज्य इस प्रणाली के ढांचे में ढल चुके थे। अतः मारवाड़ राज्य उसका अपवाद नहीं हो सकता था।

इस धारणा को अधिक स्पष्ट करने के लिये सर जदूनाथ सरकार की निम्न पंक्तियां उल्लेखनीय हैं—'इस प्रकार का प्रशासन और इसकी व्यवस्था का तरीका एवं कार्य प्रणाली तथा नाम हिन्दू राज्यों ने जो मुस्लिम राज्यों के आधीन नहीं भी थे अपनाया था। मुगल प्रणाली उस समय के स्वतन्त्र हिन्दू राज्यों के लिये एक आदर्श थी। शिवाजी जैसे कट्टर हिन्दू ने भी सबसे पहिले महाराष्ट्र में उसी की नकल की थी। यद्यपि बाद में उसने अपनी प्रशासनिक क्रियाओं को हिन्दू रूप दिया और उसके दरबार में जो पहले फारसी नामों का उपयोग होता था उनके बदले संस्कृत नामों का उपयोग किया गया।'[1]

राठौड़ नरेशों को सैनिक प्रबन्ध और समर नीति का पूर्ण ज्ञान था। सूरजप्रकाश में उपलब्ध सामग्री पर यह बात और भी निश्चित रूप से कही जा सकती है। क्योंकि इस ग्रन्थ का रचयिता कविया करणीदान तो महाराजा अभयसिंह के योद्धाओं में से एक योद्धा था अतः जो कुछ उसने महाराजा अभयसिंह के सैन्य संगठन के विषय में लिखा है, विश्वास करने योग्य है।

राठौड़ सेना का संगठन

महाराजा अभयसिंह की सेना में राजपूतों की सभी शाखाओं के योद्धा थे जैसे चांपावत, जोधावत, उदावत, जेतावत, करणोत, करमसोत, सोनगरा; चौहान, कछवाहा, देवड़ा मांगलिया आदि। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण (पुरोहित, व्यास आदि), ओसवाल (विशेषतया भण्डारी), चारण एवं मुसलमान भी महाराजा की सेना में सम्मिलित थे। भण्डारी विजयराज ने महाराजा अभयसिंह की सेना के एक भाग का संचालन अहमदाबाद के युद्ध में कुशलतापूर्वक किया था। भण्डारी खींवसिह—महाराजा के समय में जोधपुर का दीवान था और इसका पुत्र अमरसिंह अहमदाबाद के युद्ध के समय बादशाह मु. शाह के पास महाराजा की ओर से वकील था।[2] रतनसिंह भण्डारी महाराजा अभयसिंह के विश्वासपात्र व्यक्तियों में से था और युद्ध में भी गया था। पुरोहित केशरीसिंह भी महाराजा अभयसिंह के योद्धाओं में से एक था और वह अहमदाबाद के युद्ध में लड़ता हुआ काम आया।

---

1 सर जदूनाथ सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, चौथा भाग, पृ. 2-3

2 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 93

'सूरजप्रकाश' के अनुसार राठौड़ सेना चतुरंगिनी होती थी जिसमें हाथी, रथ, घोड़े और पैदल हुआ करते थे। ऊंटों का प्रयोग सेना में होता था। महाराजा अभयसिंह के अहमदाबाद युद्ध में सेना के यह सभी अंग विद्यमान थे और साथ ही तोपखाना भी उसकी सेना का एक प्रमुख अंग था।

अहमदाबाद के युद्ध के समय सआदत खां ने मुगल तोपखाने से महाराजा को तोपें दी थीं। इसके समय में मगरमुखी, सूरमुखी, नाहरमुखी आदि तोपों का उपयोग किया जाता था।[1] सेना में तीरंदाजों का भी विशेष स्थान था जो अपने कार्य में बहुत कुशल होते थे।

इस समय सेना के प्रमुखतया 2 अंग थे। एक राजपूत वर्ग जिसका नेतृत्व स्वयं महाराजा अभयसिंह करता था अथवा यह कार्य उसके द्वारा नियुक्त प्रमुख राठौड़ी घराने के किसी मुख्य व्यक्ति को दिया जाता था। यह पद अधिकतर चांपावत, उदावत, कूम्पावत अथवा मेड़तिया राठौड़ों को मिलता था। दूसरा भाग उन सैनिकों का होता था जो महाराजा द्वारा वेतन के आधार पर भर्ती किये जाते थे। उनका नेतृत्व महाराजा द्वारा नियुक्त सेनापति करता था। यह पद सामान्यतः भण्डारियों के कुटुम्ब में ही दिया जाता था।

1 **अस्त्र-शस्त्र**—महाराजा अभयसिंह के काल में विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किया जाता था जिनका उल्लेख कविया करणीदान ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूरजप्रकाश' में किया है। अहमदाबाद के युद्ध में पुराने और नवीन सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र उपयोग में लाये गये थे जैसे—तलवार, भाला, तीर, कटारी, तोप कवच का उपयोग भी शरीर रक्षा के लिये योद्धागण किया करते थे। सिर की रक्षा के लिये सिरपोस का भी उपयोग किया जाता था।

महाराजा अभयसिंह ने अपने जीवन काल में अनेकों युद्ध लड़े थे परन्तु सरबुलन्दखां के साथ अहमदाबाद का युद्ध साबरमती नदी के किनारे 10 अक्टूबर 1730 ई. को हुआ था। इस युद्ध में महाराजा की विजय हुई। इस युद्ध में महाराजा को सरबुलन्दखां से 273 छोटी और बड़ी तोपें प्राप्त हुई थीं।[2] अहमदाबाद का युद्ध अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस युद्ध के वर्णन से हमें उस समय की समरनीति अथवा युद्ध लड़ने की विशिष्ट शैली की जानकारी प्राप्त होती है।

2 **मनसब सेना**—प्रत्येक मनसबदार को अपने मनसब के अनुसार नियत संख्या में सेना रखनी पड़ती थी। इन मनसबदारों के पद आगे 'हजारी' शब्द

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 19

2 जी. आर. परिहार : मारवाड़ एवं मरहटा।

लगता था जैसे दो हजारी, तीन हजारी आदि। छोटे मनसवदारों के आगे 'सही' शब्द लगता था जैसे दो सही तीन सही आदि मनसब की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने के लिये जात और स्वार शब्द प्रयुक्त होते थे।[1]

सैनिकों के वेतन और सेना के निरीक्षण आदि से सम्बन्धित अनेक नियम बने हुए थे जिनका पालन मनसबदारों को करना पड़ता था। मनसवदारों को अपनी सेना में सैनिक भरती करने का पूरा अधिकार था। विशेषतः वे अपने परिवार के लोगों को प्राथमिकता देते थे। इनकी अच्छी सेवाओं के उपलक्ष में पदवृद्धि तथा पुरस्कार भी मिलते थे। सेवाओं में असावधानी करने पर अथवा किसी राजनैतिक कारण से सम्राट के असन्तुष्ट होने पर पद में कमी कर दी जाती थी।[2]

3 **सैन्य संग्रह एवं संगठन**—महाराजा अभयसिंह के पास अपनी स्वयं की भी वहुत सेना थी। इसके अतिरिक्त वह सेना भी थी जो जागीर प्राप्त होने की एवज में जागीरदार महाराजा अभयसिंह की सेवा में भेजते थे तथा जो महाराजा की सेना ही कहलाती थी। परन्तु इसका समस्त व्यय जागीरदार स्वयं सहन करते थे, कुछ सेना जागीरदार स्वयं रखते थे परन्तु महाराजा को आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेवा में भेज देते थे।

युद्ध का निश्चय होते ही महाराजा अपने सामन्तों एवं जागीरदारों को फरमान भेजकर ससैन्य युद्ध में भाग लेने के लिये आमन्त्रित करता था।[3] सामन्तगण अपनी सेना लेकर जोधपुर में उपस्थित हो जाते थे जहां उनका भव्य स्वागत होता था और उनके रहने आदि की पूर्ण व्यवस्था की जाती थी।

4 **युद्ध की तैयारी**—सेना जब युद्ध के लिये रवाना होती थी तो सम्बन्धित अधिकारी रास्ते में पड़ने वाले जागीरदारों को विशिष्ट व्यक्ति के साथ आगे संदेश भिजवाता था जिससे वे ठीक समय पर अपने सैनिक लेकर फौज में शामिल हो जाएँ। उस समय लोगों का शकुन में वहुत विश्वास था। ठीक शकुन न होने पर कई बार फौज आगे बढ़ने से रोक दी जाती थी। युद्ध के

---

1 इनके अर्थ के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। देखिये बी. सी. सक्सेना : हिस्ट्री ऑफ शाहजहां, पृ. 285; आशीर्वादी लाल : मुगलकालीन भारत, पृ. 570; डा. रघुवीरसिंह : राजस्थान भारती, भाग 2, अंक 1, पृ. 8 (टिप्पणी)।

2 नैणसी की लिखी मारवाड़ रा परगनां री विगत : महाराजा जसवन्तसिंह के समय में मनसवदारों और मनसव सेनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन दिया गया है, भाग 2, पृ. 332 से 334

3 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 261

पहले अश्व, अस्त्र-शस्त्र तथा तोपों की पूजा की जाती थी। तोपों की पूजा में बली भी चढ़ाई जाती थी।[1] फिर अनेक प्रकार के वाहन और युद्ध की सामग्री एकत्रित की जाती थी। महावत अपने हाथियों को और घुड़सवार अपने घोड़ों को अनेक प्रकार से सजाते थे। योद्धागण अपने हथियारों की पूर्ण रूप से देखभाल कर लेते थे।

युद्ध करने से पूर्व शत्रु की सैनिक शक्ति व आन्तरिक स्थिति का पता लगाने के लिये जासूस (हेरू) छोड़े जाते थे। सुरंगों और तोपों के द्वारा किले को तोड़ा जाता था। युद्ध आरम्भ करने के पूर्व शत्रु को ललकार कर आधीनता स्वीकार करने के लिये कहा जाता था।[2]

उसके आधीनता स्वीकार न करने पर महाराजा अपने सरदारों को एकत्रित कर संबोधित करता था। इस सभा में सभी सामन्तगण तथा अमीर, उमराव उपस्थित रहते थे। महाराजा द्वारा युद्ध का निश्चय स्पष्ट करने पर योद्धागण अत्यन्त जोशपूर्ण शब्दों में विजय अथवा मरण संकल्प प्रकट करते थे। उसके पश्चात् महाराजा सेना के सम्मुख भाषण देता था एवं शूरवीरों का धर्म अत्यन्त ओजमयी वाणी में प्रकट करता था। इसके बाद फौज को कूच करने के नगाड़े बजाए जाते थे। शक्ति की पूजा करके राजा हाथी के हौदे पर आसीन होते थे। फिर युद्ध का डंका बजाया जाता था। तीसरा नगाड़ा बजते ही युद्ध आरम्भ हो जाता था। शत्रु को सम्मुख युद्ध करने के लिये ललकारा जाता था।

"ओट ओट मति तके, अडर लड़ि रीत अमीरां"[3]

(अर्थात् हे वीर! युद्ध क्षेत्र में ओट लेने की नीयत से मत ताकना, अपितु अमीरों की ही रीति से युद्ध में लड़ना।)

5 **युद्ध समय**—युद्ध दिन के समय लड़े जाते थे और रात्रि के समय सेना आराम करती थी। किन्तु अहमदाबाद के युद्ध में रात्रि के समय भी गोलाबारी होती रही थी।[4]

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 261

2 वही, भाग 2, पृ. 267। अहमदाबाद युद्ध से पहिले महाराजा अभयसिंह ने भी सरबुलन्दखां को पत्र लिखकर बादशाह की आधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव किया था। परन्तु उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और वह युद्ध करने को तैयार हो गया। महाराजा ने तब एक दरबार किया जिसमें उसकी सेना के सभी मुखियाओं ने अपनी जोशीली वाणी में सरबुलन्दखां को पराजित करने अथवा प्राण दे देने की प्रतिज्ञा महाराजा के सम्मुख की। सूरजप्रकाश, पृ. 249-306

3 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 356

4 वही, भाग 3, पृ. 263

6 **मोर्चाबन्दी**—राठौड़ राजा युद्ध आरम्भ करने से पूर्व अच्छी प्रकार मोर्चाबन्दी कर लेते थे। मोर्चाबन्दी ऊंचे स्थान अथवा किले में होती थी जहां पर तोपें लगाई जाती थीं। परन्तु राठौड़ अधिकतर खुले मैदान में लड़ना अपनी शान समझते थे।[1]

7 **आक्रमण**—युद्ध करने वाली सेना के अनेक अंग होते थे जैसे—

1 तोपे एवं तोपची, 2 हस्ति सेना, 3 घुड़सवार, 4 पैदल

यदि गोलाबारी करने के लिये उपयुक्त मोर्चा होता तो युद्ध प्रारम्भ होने पर पहले तोपों से शत्रु पर वार किया जाता था और गोले बरसाए जाते थे। जब गोलाबारी से आवश्यक मार करना सम्भव नहीं रहता तब हस्ति सेना को आक्रमण करने की आज्ञा दी जाती थी। हाथियों पर छोटी तोपें एवं हथनालें रहती थीं। घुड़सवारों के हाथ में तलवार एवं भाले रहते थे। इसके पश्चात् पैदल सेना आक्रमण करती थी। पैदल सैनिकों के पास बन्दूकें, भाले, तीर कमान, खंजर, छुरा, कटार आदि हथियार रहते थे।

राठौड़ नरेश सीधे आक्रमण करने में ही अपना शौर्य समझते थे। रण-नीति के अनुकूल छल-कपट करना राठौड़ नरेशों को अनुचित एवं धर्म विरोधी लगता था। सामूहिक रूप से सेना शत्रु सेना पर आक्रमण करती थी। तलवार निकाल कर शत्रु सेना पर टूट पड़ना और भाले की नोंक पर शत्रुओं के सिरों को पिरोना, बाणों से शत्रुओं के शरीरों को बींध डालना, मदमत्त हाथियों के मस्तक को भयंकर मार कर विदीर्ण कर डालना व्यक्तिगत शौर्य एवं वीरता की निशानी थी।

राठौड़ शासक अपने पैदल सैनिकों के व्यक्तिगत शौर्य पर बहुत विश्वास रखते थे। शत्रु सेना के झण्डे को छीनकर ले आना प्रत्येक योद्धा अपना परम लक्ष्य मानता था। भागते शत्रु पर आक्रमण करना राठौड़ वीर धर्म के विरुद्ध कार्य समझते थे।

युद्ध विजय के बाद शत्रु के अस्त्र-शस्त्र और तोपें एवं गोला बारूद और हाथी-घोड़े लूट लिए जाते थे। नगाड़, नौबत एवं अन्य मंगल वाद्य बजाते हुए तथा ध्वज लहराते हुए राठौड़ विजित नगर में प्रवेश करते थे। युद्ध समाप्ति के पश्चात् बड़ा उत्सव किया जाता था और मृतकों का क्रिया-कर्म किया जाता था।

8 **सेना की विशिष्ट शब्दावली**—1 हरावल—चंदावल व गोल—सेना का अग्रिम भाग हरावल कहलाता था। चंदावल सेना का पीछे का भाग कहलाता था। गोल अथवा गोलज सेना का मध्य भाग कहलाता था।[2]

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 2

2 सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 28

2 खासा झण्डा— महाराजा जब रण यात्रा में जाता था तब राजकीय झण्डा साथ रहता था और उसकी रक्षा के लिए उपयुक्त सैनिक रखे जाते थे। शत्रु झण्डा गिराने या प्राप्त करने का प्रयास इसलिए करते थे कि यह विजय का प्रतीक होता था।[1]

3 खासा हाथी—नरेश की सवारी का हाथी खासा हाथी कहलाता था।[2]

4 खासा गार्ड—मुख्य दल जो राजा अथवा सेनापति के आसपास रहता था।[3]

समरनीति के प्रमुख तथ्य

इस प्रकार इस समय की समर नीति के प्रमुख तथ्य हमारे सामने इस प्रकार आते हैं—

1 सेना में पैदलों की संख्या अधिक होती थी और महाराजा इन पर पूरा भरोसा करता था।

2 घुड़सवार होते थे पर उनकी संख्या कम होती थी।

3 इस काल में किलेबन्दी में अधिक विश्वास नहीं रखा जाता था बल्कि खुले मैदान में युद्ध करना अच्छा समझा जाता था।

4 चालाकी एवं षड्यन्त्र के द्वारा युद्ध विजय करना अच्छा नहीं समझा जाता था। धर्म युद्ध में राजाओं का अधिक विश्वास था।

5 छापामार युद्ध की कला से यह लोग पूर्ण रूप से परिचित नहीं थे।

6 राठौड़ों का अपना भी तोपखाना होता था परन्तु वह मुगल तोपखाने के समान उत्कृष्ट नहीं था।

7 इनका शकुन और अपशकुन पर बहुत विश्वास था।

निष्कर्ष

मारवाड़ की शासन व्यवस्था का क्रियात्मक केन्द्र महाराजा था। जन-साधारण की दृष्टि में यहां का नरेश परमात्मा के समान था। नरेश का प्रभुत्व व्यावहारिक रूप में अनेकों परम्पराओं पर केन्द्रित था। अधिकतर नरेश अपनी शक्ति के द्वारा ही अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति कर सकने में समर्थ होता था और शासन को इसी आधार पर सचालित भी करता था। परन्तु बल का प्रयोग सभी अवसरों पर सम्भव नहीं था।

जिसे मारवाड़ निवासी भगवान का रूप मानते थे सैद्धान्तिक रूप में वह

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 307, 314, 327

2 वही, भाग 2, पृ. 306

3 वही, भाग 2, पृ. 282

सार्वभौम शासक, राज्य का सर्वोत्तम अधिकारी, सेना का सर्वोच्च कमाण्डर और राज्य का श्रेष्ठ पदाधिकारी भी माना जाता था। विधि अधिकार इसके सर्वश्रेष्ठ थे। जनता का माई-बाप वही माना जाता था।

शासन कुशलतापूर्वक चलाने मे वह अपने सहयोगियों की मदद भी लेता था। ये अधिकारी महाराजा के प्रति उत्तरदायी एवं उसके सेवक होते थे।

मारवाड़ नरेश और सम्राट के बीच सम्बन्ध वकीलों के द्वारा रहता था। इनमें से एक वकील प्रान्तीय शासक के दरबार में रहता था और दूसरा शाही दरबार में रहता था। शाही आज्ञाओ को अपने स्वामी तक पहुंचाने और शाही आदेशों को कार्यान्वित करने की सलाह देता रहता था। भण्डारी अमरसिंह महाराजा अभयसिंह का वकील था।

सामन्त महाराजा के आधीन होते थे। 'जब्ती' एवं 'रेख' का भुगतान करते थे और नरेशों से गांव अथवा पट्टा पाने के अधिकारी सब सामन्त समान रूप से होते थे। जागीरदार नरेश को आवश्यकता पड़ने पर सहायता देते थे और कार्यकारिणी सभा के सदस्यों के समान माने जाते थे। प्रधान राज्य का प्रधानमन्त्री होता था। व्यवहार मे यह महाराजा की प्रतिछाया माना जाता था। दीवान राज्य का राजस्व सम्बन्धी अधिकारी होता था। प्रत्येक परगने में एक हाकिम होता था जो राज्य व्यवस्था एवं राजस्व वसूली आदि कार्य देखता था। मुसाहिबों का स्थान शासन प्रबन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण था। फौजबख्शी सैनिक विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था और कानूंगो का राजस्व की व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान था।

उस समय की परिस्थितियो और प्राचीन परम्पराओं के अनुसार, प्रशासन, राजस्व और फौज के विभाग पूर्णतया एक दूसरे से अलग नही थे। वहुत से उच्च अधिकारियों को प्रायः मिले-जुले रूप में उपरोक्त तीनों जिम्मेदारियों का निर्वाह करना पड़ता था।

ड्योढीदार, कोतवाल, हुजदार, शिकदार, पोतदार, चौकी नवीस आदि अन्य अधिकारी भी हुआ करते थे।

महाराजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। हिन्दुओं पर 'मनुस्मृति' के आदेश एवं मुसलमानों पर 'शरह' की धाराएं रोपित करने का प्रचलन था। मृत्यु दण्ड देने का अधिकार केवल महाराजा को ही था। न्याय व्यवस्था के दो विभाग थे—सदर फौजदारी और सदर दीवानी।

राज्य कर व्यवस्था के अन्तर्गत रेख, पेशकशी, चाकरी आदि कर लगाए जाते थे।

ताजीमें—इकहरी और दोहरी होती थीं। बांह पसाव, हाथ का कुरब, सिर का कुरब, हाथी सरोपाव, असि सरोपाव, जवाहर मोतीकड़ा, पालकी सरोपाव, सादा सरोपाव, कौमी दस्तूर विशेष उल्लेखनीय थीं।

अभयसिंह को सैनिक प्रबन्ध और समर नीति का पूर्ण ज्ञान था। सेना में राजपूतों की सभी शाखाओं के योद्धा थे। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण, ओसवाल, चारण एवं मुसलमान भी सेना में सम्मिलित थे। सेना चतुरंगिनी होती थी जिसमें हाथी, रथ, घोड़े और पैदल हुआ करते थे। ऊंटों का भी प्रयोग सेना में होता था। तलवार, भाला, तीर, कटारी, तोप, कवच का उपयोग शरीर रक्षा के लिए योद्धागण करते थे। सिर की रक्षा के लिए सिरपोस का उपयोग होता था। स्वयं की सेना के अतिरिक्त मनसद सेना ही होती थी।

इस प्रकार अभयसिंह की शासन व्यवस्था का संगठन यद्यपि अधिक मात्रा में मुगल शासन व्यवस्था से प्रभावित था परन्तु अभयसिंह की शासन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह था कि प्रजा के सुख-दुःख के प्रति वह जागरूक रहे। भण्डारी रघुनाथसिंह ने महाराजा अभयसिंह की अनुपस्थिति में कुछ समय मारवाड़ का शासन सम्भाला था जिससे वह जनता से सम्पर्क बनाए रखे। साथ ही अभयसिंह की हार्दिक इच्छा यही रहती थी कि प्रजा में सम्पन्नता बढ़े, यद्यपि उसके काल में परिस्थितियां इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अधिक अनुकूल नहीं थीं।

यद्यपि अभयसिंह शासन की क्रियात्मकता का केन्द्र था परन्तु अधिकतर वह शासन चलाने के लिए अपने सहयोगियों की सलाह और मदद लेता था। अधिकारियों पर महाराजा का नियन्त्रण होते हुए भी वे अपने-अपने विभागों में स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे।

अभयसिंह की सेना संगठित थी और चतुरंगिनी मानी जाती थी। सेना में पैदलों की संख्या घुड़सवारों से अधिक होती थी। उसकी सेना किलेबन्दी में अधिक विश्वास नहीं रखती थी बल्कि खुले मैदान में युद्ध करना अच्छा समझती थी। चालाकी एवं षडयन्त्र द्वारा युद्ध विजय करना अच्छा नहीं समझा जाता था।

परिशिष्ट

अभयसिंह के समय में जोधपुर के पदाधिकारी

सूरजप्रकाश में महाराजा अभयसिंह के समय के अनेकों पदाधिकारियों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अधिकारी अधिकतर भंडारी अर्थात् ओसवाल जाति के थे। ये लोग दीवान के रूप में भी कार्य करते रहे थे और अपनी सूझ-बूझ से राज्य का हित सम्पादन करते रहे। इन्हीं भंडारियों में विजयराज जैसे सूरमा भी हुए जिसने महाराजा अभयसिंह की सेना के एक भाग का संचालन किया और अहमदाबाद युद्ध में अपनी बुद्धि और रण कुशलता का परिचय दिया था।

खींवसिंह भंडारी—महाराजा अभयसिंह के समय में यह जोधपुर का दीवान रहा था। इसका पुत्र अमरसिंह अहमदाबाद के युद्ध के समय बादशाह मुहम्मदशाह के पास महाराजा अभयसिंह की ओर से वकील था (सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 93)।

भंडारी रघुनाथ—महाराजा अजीतसिंह के समय में दीवान था। जब महाराजकुमार अभयसिंह मुज्जफर अलीखां का सामना करने अजमेर से रवाना हुआ तब रघुनाथसिंह भंडारी उसके साथ था।

रतनसी भंडारी—यह महाराजा अभयसिंह के विश्वासपात्र व्यक्तियों में से था। यह महाराजा का मन्त्री रहा था। अहमदाबाद के युद्ध में भी महाराजा के साथ था (सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 302)। जब महाराजा अहमदाबाद से दिल्ली की ओर गया तब इसे ही उसने गुजरात की सूबेदारी का भार सौंपा था। इसने इस कार्य को बहुत कुशलता से निभाया।

भंडारी अमरसिंह—यह खींवसी भंडारी का पुत्र था। यह महाराजा अभयसिंह का दीवान था। अहमदाबाद के युद्ध के समय दिल्ली में यह भी बादशाह मुहम्मदशाह के पास महाराजा अभयसिंह के वकील के रूप में था। इसी ने महाराजा अभयसिंह के द्वारा सरबुलन्दखां को हराने का समाचार बादशाह को दिया था (सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 269)। यह बहुत बुद्धिमान, चतुर और महान् राजनीतिज्ञ था।

पुरोहित केशरीसिंह—यह जोधपुर का महापराक्रमी जागीरदार था। इसके पिता का नाम अखेसिंह था। अहमदाबाद के युद्ध में यह महाराजा के साथ था। वहीं अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।

अभयकरण—यह राठौड़ वीर दुर्गादास का पुत्र था और सरबुलन्दखां के विरुद्ध अहमदाबाद के युद्ध में महाराजा अभयसिंह के साथ था। अनेकों मुगलों से घिर जाने पर भी इसने अतुल साहस और वीरता का परिचय दिया था। (सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 123-126)

विजयराज भंडारी—यह महाराजा अजीतसिंह और महाराजा अभयसिंह दोनों के समय में राज्य के मंत्री और सेनानायक के पदों पर आसीन रहा। जब अजमेर में नींबाज ठाकुर उदावत अमरसिंह ने मुगल फौज का सामना करने का संकल्प किया तब विजयराज भंडारी भी उनके साथ था। अहमदाबाद युद्ध में अभयसिंह की फौज का एक भाग भंडारी विजयराज के अधिकार में था। इसके पास सात सहस्र सवार और चार सहस्र पैदल थे। इस युद्ध में इसने अपनी बुद्धि, वीरता और रण कुशलता का श्रेष्ठ परिचय दिया। महाराजा अभयसिंह का यह हमेशा कृपा पात्र बना रहा (सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 119, 359; भाग 3, पृ. 168, 232-236)।

अध्याय 3

मारवाड़ की विभिन्न जातियां

परिचय

महाराजा अभयसिंह के समय में विभिन्न जातियां पाई जाती थीं। यद्यपि उस समय का वर्गीकरण स्पष्टतया प्राप्त नहीं है परन्तु यह मानकर कि विभिन्न मारवाड़ नरेशों के समय में मुख्यतः एक ही प्रकार का जातीय संगठन था। हमने मर्दुम-शुमारी[1] को मुख्य आधार माना है क्योंकि यह स्रोत अभयसिंह के शासनकाल से थोड़ा ही पुराना है। विभिन्न जातियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

राठौड़

राठौड़ मारवाड़ में कन्नोज से आए थे और इसी कारण इनकी खांप कन्नोजिया थी। इनकी कुल देवी नागनेचियांजी थी। पहले नाम राठेश्वरी था और इसी के नाम पर इनका नाम राठौड़ हुआ था। इस समय में राठौड़ ही देश के मालिक थे और दूसरे राजपूत उन्हीं के आधीन थे। राठौड़ राज-राजपूतों में एक बहादुर जाति थी। इसने अनेक बार मुगल बादशाहों की फौजों का मुकाबला किया था। राठौड़ों को रणबंका कहा जाता था जिसका अर्थ है लड़ाई में बांके होना।

'वलहट बंका देवड़ा, करतब बंका गौड
हाड़ा बंका गाढ में, रणबंका राठौड़।'

अर्थात् आग्रहपूर्वक भोजन करने में देवड़ा, कर्त्तव्य पालन में गौड, दृढ़ता में हाड़ा और रण में राठौड़ बांके वीर कहलाते हैं।

अन्य महत्वपूर्ण राजपूत

1 सिसोदिये—सिसोदिया गहलोत राजपूतों की एक खांप थी। मारवाड़

---

1 मर्दुमशुमारी रिपोर्ट, राज. मारवाड़, तीसरा भाग, विद्यासाल, जोधपुर, 1815।

में सिसोदिये मेवाड़ से आये थे। ज्यादा जागीरें इनकी परगने गोडवाड़ में थीं और वे राणावत कहलाते थे।

2 **तंवर**—मारवाड़ में तंवर तंवरावाटी से आये थे। मारवाड़ में रामदेवजी तंवर बड़े करामाती हुए जो रामशाह पीर कहलाते थे। इनकी पूजा मारवाड़, मेवाड़ और मालवे में होती थी। आज तक भी हर साल भादों के महीने में एक बड़ा मेला गांव रामदेवरा, इलाका पोकरण में, जहां इनकी समाधि है, हुआ करता है। तंवर मारवाड़ में खेती या नोकरी करते थे। जमींदारी उनके यहां नहीं थी और न ही कोई बड़ा जागीरदार था।

3 **भाटी**—भाटी अपने आपको चन्द्रवंशी मानते थे। पहले कुछ हिस्सा मारवाड़ का भी इनके पास था लेकिन वह राठौड़ों ने ले लिया। जो भाटी जागीरदार मारवाड़ में थे उनको चांकरी तथा सगपन से जागीरें मिली थीं।

4 **पंवार**—मारवाड़ में पंवार आबू से आए थे। राठौड़ों ने पंवारों से धीरे-धीरे जमीन छीन ली। बाद में पंवार मारवाड़ में रैय्यत की तरह रहने लगे और खेतीबाड़ी करके गुजारा करने लगे।

5 **नातरायत राजपूत**—यह वे राजपूत थे जो विधवा स्त्री का नाता करते थे।

मुसलमान राजपूत

मारवाड़ में मुसलमान राजपूत जगह-जगह पाये जाते थे और ये सिपाही कहलाते थे। इनमें हर कौम के राजपूत शामिल थे जो मुसलमानी राज्य में मुसलमान बनाये गये थे।

1 **देशवाली मुसलमान**—ये भी राजपूतों से मुसलमान बने थे। इनका पेशा खेती करना था और इनमें कुछ सिपाही भी थे।

2 **क्यामखानी**—मारवाड़ में क्यामखानी शेखावाटी से आये थे। ये विशेषकर डीडवाना, मेड़ता और नागोर के परगने में रहते थे।

3 **नायक**—यह भी एक जाति देशी सिपाहियों की थी। जोधपुर गढ़ की पोलों की चावियां बहुत सालों तक इनके पास रही और ये लोग पोलों को निश्चित समय पर खोला और बन्द किया करते थे इसलिए इनका उपनाम नायक पड़ गया। इसी नाम से इन्होंने अपनी जाति निश्चित कर ली थी। बाद में भी जो सिपाही नौकरी, रिश्तेदारी या मातहती इत्यादि से इनमें शामिल होते गये वे भी नायक कहलाये।

नायक सुन्नी मुसलमान थे। ज्ञान की इनमें बहुत कमी थी। उनमें जो 'काजी' कहलाते थे वे केवल नाम के काजी थे। इनका एक मोरिसआला फूलखां[1] हुआ था, उसी के वंश में ख्वाजा बख्श नामक एक नायक हुआ था।

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 78

कहा जाता है कि उसने एक अजीब रीति से महाराजा अभयसिंह का कब्जा अहमदाबाद में कराया। महाराजा की जीत तो नवाब के विरुद्ध हो गयी थी परन्तु शहर में कोतवाल कपूर भंसाली (भंडसाली) कब्जा किये हुए था। ख्वाजाबख्श कासिद का भेष बनाकर दरवाजे पर गया और कहा कि वह दिल्ली से कपूर भंडसाली के नाम हुक्म लाया है। दरबानों ने इसे अन्दर ले लिया। उसने कोटवाली में जाकर कागज देने के बहाने से कपूर को छुरियों से मार डाला। फिर भाग कर कोट के ऊपर से घास की एक बागर में कूदा जिससे उसके हाथ पैरों में बड़ी चोट आई। कोटवाल के मारे जाने से महाराजा का शहर पर अधिकार हो गया और महाराजा ने ख्वाजाबख्श की बंदगी से खुश होकर उसे कुछ जागीर शिराद इलाके गुजरात में दी और कुछ मारवाड़ में। ख्वाजाबख्श ने मारवाड़ की जागीर तो खुद ने रखी और शिराद में अपने भाई को भेज दिया। अब तक उसकी औलाद वहां है।[1]

खेती करने वाली जातियां

मारवाड़ में यों तो बहुत जातियां खेती करती थीं परन्तु मुख्यत: करसरणीक अर्थात् काश्तकार जातियां जाट, माली, विशनोई, सीरवी और कलवी थे जो खेती के अतिरिक्त बहुत कम दूसरा धन्धा करते थे।

1 माली—माली लोग काश्तकारी अर्थात् करसरण में अधिक चतुर थे क्योंकि हर प्रकार का अनाज, साग-सब्जी, फल-फूल और पेड़ जो मारवाड़ में होते थे, उनका लगाना और तैयार करना वे भली प्रकार जानते थे। इसीलिए इनका दूसरा नाम बागवान था। मुसलमानों के समय में इस जाति की अधिक तरक्की हुई थी। उनके डर से बहुत से राजपूत माली बन गये थे।

उस समय जो पुराने माली थे उन्हें महुर माली का नाम दिया गया था क्योंकि मुसलमान शासन में बहुत से राजपूत माली बन गए थे।[2] महुर का अर्थ था पहिले के माली। महुर माली जोधपुर में बहुत कम थे। यह लोग पूरब की तरफ से आये थे। बाकी सब उन लोगों की सन्तान थे जो राजपूत से माली हुए थे। उनकी बारह जातियां, कछवाह, परिहार, सोलंकी, पंवार, गहलोत, सांखला, तंवर, चौहान, भाटी, राठौड़, देवड़ा और दहिय्या थे।

राजपूत माली मारवाड़ में काफी अधिक पाये जाते थे। इनके पूर्वज शहाबुद्दीन, कुतुबुद्दीन, गयासुद्दीन और अलाउद्दीन इत्यादि दिल्ली के बादशाहों

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 79-80

2 राजपूत किस प्रकार माली बने इसका विस्तार पूर्वक विवरण देखिये : मर्दुमशुमारी, पृ. 83-84

से लड़ाई हारकर जान बचाने के वास्ते राजपूत से माली हुए थे।[1]

जोधपुर में गहलोत माली अधिक थे। वे अपनी पीढ़ियाँ कुवेरे के गहलोत राव ईसरदास से मिलाते हैं जो तुरकों के डर से मुसलमान हो गया था। उसकी सन्तान में से हेमा माली जो बालेसर के ईंदों का प्रधान था राव चूंडा को मण्डोर का राज्य दिलाने की कोशिश में शामिल था जिनको राव जी ने मण्डोर में अमल हो जाने पर अपने वचन के माफिक जो पोस वदी दस संवत् 1449 को थाने सालोडी में किया गया था, मण्डोर के पास बहुत सी जमीन माफी के रूप में दी थी। हेमा की औलाद में चतुरा माली ने महाराजा जसवन्तसिंह के समय में काबुली अनार, नीम्बू व बेर के बाग कागे में लगाए थे।

महाराजा अभयसिंह के समय में अक्खा माली ने गुजरात से केतकी, चम्पा और रायण अर्थात् खिरनी के पेड़ लाकर मण्डोर में लगाए और वहां से एक लंगूर भी ले आया था। मण्डोर के लंगूर भी उनकी नस्ल से समझे जाते हैं। अक्खा से महाराजा अभयसिंह बहुत सी बातें किया करता था क्योंकि उसको बागवानी का बहुत शौक था। इस कारण अक्खा को बहुत घमंड हो गया था और वह दूसरे आदमियों के साथ कम बात-चीत किया करता था। वह बार बार यही कहता था 'हूं ने महाराज ने अम्बो पंचोली' जिससे उसका तात्पर्य यह था कि वह, महाराज और अम्बो पंचोली ही आपस में बात कर सकते थे। अम्बो पंचोली महाराज का मर्जीदान था और अक्सर उनकी हाजरी में हाजिर रहा करता था। इसलिए अक्खा अपने ख्याल में महाराजा और अम्बा पंचोली के अतिरिक्त और किसी को इस लायक नहीं समझता था कि उससे बात करे।

2 **विसनोई**—यह कौम जाटों में से निकली थी और जांभाजी को मानती थी जिसने संवत 1542 के काल में बहुत से जाटों को अपने पास से खाना देकर बीस-नव अर्थात् 29 बातें अपने धर्म पन्थ की सिखाईं जिससे इनका नाम विसनोई हो गया। इनकी विशेष बातें निम्नलिखित थीं—

1 बच्चा होने के पश्चात् 30 दिन तक औरत से दूर रहें और उसे किसी भी वस्तु के हाथ न लगाने दें।

2 औरत जब स्त्रीधर्म से हो तो उससे पांच दिन कोई कार्य न कराया जाय।

3 प्रतिदिन स्नान करें और बच्चे को भी जब से वह अन्न खाने लगे प्रत्येक दिन नहलावें।

4 एक ही औरत पर संतोष रखें।

---

1 राजस्थान की जातियां—

5 पांचों वक्त विष्णु का नाम लें।

6 जो कुछ अपने पास हो उसी को काफी समझें।

7 शाम के समय आरती करें।

8 प्रतिदिन घी को अग्नि पर डालकर हवन करें।

9 पानी छानकर पिया करें।

10 लकड़ी या छाणे (ईंधन) खूब झाड़कर या धोकर जलाया करें जिससे कोई जीव की हत्या न हो।

11 बात सोच-विचार कर करें।

12 कभी चोरी न करें।

13 कभी झूठ न बोलें।

14 जीव की रक्षा करें। न स्वयं हिंसा करें, न किसी को करने दें।

15 भोजन किसी अन्य का बनाया हुआ न खावें।

16 कभी किसी की बुराई न करें।

17 कभी किसी पर क्रोध न करें।

18 कभी हरा-भरा वृक्ष न काटें।

19 अमावस के दिन व्रत करें।

20 घर में भेड़-बकरी हो तो उसको अमर कर देवें और दूसरों से भी जहां तक बने ऐसा करावें।

21 बैल को बाधी न करें।

22 अमल न खावें।

23 दारू न पीएँ।

24 तम्बाकू न खायें।

25 भंग न पीयें।

26 नीले रंग का कपड़ा उपयोग में न लावें।

27 दूसरे को पल्ला न लगावें।

28 संसार से ज्यादा मोह न रखें।

29 सब प्राणियों पर दया रखें।

3 **सीरवी**—सीरवियों के दो थोक जणवा और खारडिया थे। सीरवी खारडिया राजपूतों से सीरवी हुए थे जिनकी जाति परमार, चौहान, राठौड़, सवेटा, गहलोत, पड़ियारया सोलंकी, भायल और देवड़ा थी। गणवा तो जलाये जाते थे और खारडिया गाड़े जाते थे।

4 **पहाड़ी जातियां**—मेवाती, मेर, मीने, भील और गिरासिया थे जो पहाड़ों में रहते थे।

मेवाती—ये मारवाड़ में मेवात से आये थे। मेवात एक पहाड़ी क्षेत्र था जो अलवर, भरतपुर, गुड़गांवा के बीच में था। इन्हीं के नाम से वह क्षेत्र

मेवात कहलाता था। मेवाती अपनी जात राजपूतों से मिलाते थे परन्तु मुसलमानों के भय के कारण ये मुसलमान बन गये। लेकिन इनके रीति-रिवाज अधिकतर राजपूतों से मिलते थे जैसे इनकी औरतों में पर्दा होता था। शादी विवाह भी अपना गोत्र टालकर करते थे। परन्तु विवाह की रीति और मुर्दे को गाड़ने की रीति इनमें मुसलमानों की तरह से होती थी। मेवाती एक मजबूत और बहादुर जाति थी। यह जाति अधिकतर लूट-मार करने के लिये प्रसिद्ध थी।

मेर—मेर सोजत और जैतारण के परगने में रहते थे जो इनके निवास स्थान मेरवाड़ा इलाका अजमेर से मिले हुए थे। मेरवाड़ा एक पहाड़ी क्षेत्र था। पहिले यहां गूजर रहते थे परन्तु मेरों ने इन्हें यहां से निकाल दिया और स्वयं मालिक बन गये जिससे इस क्षेत्र का नाम मेरवाड़ा हो गया।

मीणे—मारवाड़ में मीणे 2 प्रकार के थे। एक तो वे जो मारोठ, नावें और सांभर आदि परगनों में रहते थे। इन्हें राजपूत मीने कहा जाता था। ये उज्ज्वल मीने भी कहलाते थे क्योंकि इनके हाथ का पानी और खाना हिन्दू लोग भी खाते थे।

दूसरे प्रकार के मीने परगने गोडवाड़ और जालोर में रहते थे। ढेढ्ये मीने (नीच मीणे) कहलाते थे। इनको कोई हिन्दू छूता तक भी नहीं था क्योंकि ये गाय, बैल और भैंस का मांस खाते थे।

इन दोनों में आपस में कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु चोरी दोनों ही करते है। इनका धर्म शाक्तिक था।[1] वे देवी (माताजी) को पूजते थे। इनके रिवाज गूजरों और राजपूतों से मिलते थे। जैसे गूजरों की तरह ये श्राद्ध, दिवाली के दिन करते थे और माता की पूजा राजपूतों की तरह करते थे।

भील—इनका धर्म भी शाक्तिक था। ये चावंडा माता को पूजते थे तथा महादेव व सूर्य की भी उपासना करते थे। ये लोग अपने मुर्दों को जलाते थे और मोसर भी करते थे। इनका मुख्य कार्य चोरी करना था परन्तु कुछ लोग खेती बाड़ी का काम भी करते थे। भीलों को चमार भी अपने से नीचे समझते थे। मारवाड़ में अधिकतर भील जसवन्तपुरा के परगने में रहते थे। ये लोग भैंसा और ऊंट को भी खा जाते थे। शराब भी पीते थे।

गिरासिया—ये गोडवाड़, सिरोही और मेवाड़ के पहाड़ों में रहते थे। इनका रहन-सहन भीलों जैसा था परन्तु इनकी तरह चोर नहीं होते थे तथा खेती करके अपना निर्वाह करते थे। इनके विषय में भाट लोगों का कहना था कि इनका बाप राजपूत था और मां भीलणी। इस प्रकार ये बिगड़े हुए राजपूत थे।

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 111

के ब्राह्मणों से बनी है और उसमें कुछ राजपूत जातियां भी बिखे की मारी शामिल हो गई थीं। इनकी बहुत-सी खांपें थीं।)

डाकोत—डाकोत दिसन्त्री, जोतसी, सनीसरया और थावरीया भी कहलाते थे क्योंकि शनिचर का दान यही लोग लेते थे।

जोशी या सांचोरा ब्राह्मण, सनाढ या सनावड ब्राह्मण, पाराश्वर ब्राह्मण, कानकुब्ज या कनोजिया ब्राह्मण भी हुए थे।

जोशी या सांचोरा ब्राह्मण अपने आपको पंचद्राविड कहते थे। क्योंकि यह दक्षिण से आकर सांचोर में बस गए इसलिए इनका नाम सांचोरा हो गया। यह अधिकतर पुरोहिताई का काम या मन्दिरों में सेवा पूजा करते थे।

सनाढ़ या सरनावड़ ब्राह्मण भिंड, जो आगरे जिले में था, के रहने वाले थे परन्तु मारवाड़ में राव सियाजी के साथ कन्नोज से आए। खाना बनाने का काम व रसोड़े में नौकरी किया करते थे।

कानकुब्ज या कनोजिया ब्राह्मण कन्नोज में रहने से कानकुब्ज कहलाए।

पल्लीवाल ब्राह्मण पाली में बसने से इनका नाम पल्लीवाल हुआ और पाली में पूरब की ओर से आए थे।

सैय्यद—मुसलमानों में वैसे ही पूजनीय थे जैसे ब्राह्मण हिन्दुओं में माने जाते थे। सैय्यद का अर्थ अरबी भाषा में 'सरदार' से था। यह 'आले नबी ओलादे अली' भी कहलाते थे। आल का अर्थ अरबी भाषा में बेटी की सन्तान से है। सैय्यदों की पीढ़ियों का सिलसिला मां की ओर से मोहम्मद साहिब में मिलता है जो मुसलमानों के पेगम्बर (अवतार) और पिता की तरफ से 'अली' से जो मुहम्मद साहब के चचेरे भाई थे।

सैय्यदों का धर्म सुन्नी भी था और शिआ भी परन्तु मारवाड़ में बहुत ही कम सैय्यद शिआ थे। सुन्नी और शिआ के धर्मो में बड़ा अन्तर है। सुन्नी मोहम्मद साहब के चारों खलीफों को अपने हक में से खलीफा हुआ मानते हैं और शिआ सिर्फ हजरत अली को खलीफा अपने हक का मानते हैं और उनसे अगले तीनों खलीफों को नहीं मानते। शिआ मोहर्रम के दिनों में इमाम हुसैन के ताजिया बनाकर शोक करते हैं और 'यजीद' को बुरा कहना आवश्यक समझते हैं परन्तु सुन्नी ऐसा नहीं समझते।

जती—यह जैन धर्म के पूज्यनीय थे। जैनी लोग इनको अपना गुरु मानते थे। जती विवाह नहीं करते थे, केवल चेलों से अपनी परम्परा चलाते थे। इनका कहना था कि जब ऋषभदेव स्वामी ने राज्य छोड़कर तपस्या की और जैन धर्म चलाया तब जिन लोगों ने उनके चेले होकर गृहस्थ धर्म को त्यागा और वेराग लिया और इन्द्रियों को जीता वे जती कहलाए। जती का अर्थ जितेन्द्री से है। जतियों का काम मुख्यतः उपदेश देना और धर्म की किताबें पढ़ना था।

दादू पन्थी—यह पंथ दादूजी से चला था। दादूजी गांव नराने (जो सांभर के पास है) के निजारे थे। अकबर बादशाह के समय में उसने फकीरी ली थी और उसने अपने सेवकों को मूर्ति पूजने से मना किया, जीव हिंसा न करने और मांस न खाने का उपदेश दिया। मारवाड़ में दादू पन्थी नराने से आए थे। अमरसिंह के समय में कृष्णदेव नराने के महंत थे, उनको अमर सिंह जोधपुर और बख्तसिंह नागौर में रखना चाहते थे परन्तु कृष्णदेव ने मेड़ते में रहना उचित समझा और दोनों को राजी कर दिया।

ओसवाल—ये मारवाड़ में बहुत थे और यहीं से दूसरे स्थानों में गए थे। इनकी उत्पत्ति गांव ओसियां से हुई थी जो जोधपुर से 20 किलोमीटर उत्तर में है। यह पहिले बड़ा शहर माना जाता था और 18 खांप के राजपूत यहां रहते थे जिनको रत्नप्रभ सूरि ने अपने उपदेश से जैनी बनाकर ओसवाल नाम रखा था। बाद में धीरे धीरे जो व्यक्ति जातियों के उपदेश या मुसलमानों के उपद्रव से जैनी होते गए वे सब ओसवालों में मिला दिए गए।

खटदर्शन

खटदर्शन के अन्तर्गत हिन्दू, जैन और मुसलमानों के साध एवं फकीर गिने जाते थे। जोगियों का एक पन्थ हो गया था जो अपनी परम्परा गुरु गोरखनाथ से मिलाते थे और इस पन्थ को उसी का चलाया हुआ मानते थे।

1 **रामावत साध**—साध शब्द साधु का बिगड़ा हुआ मालूम होता है जिसका अर्थ संस्कृत में अच्छे आदमी से है। लेकिन इन लोगों का इतिहास यह बताता है कि इनका नाम दस बातों की साधना के कारण हुआ था।[1]

रावतों का गुरुद्वारा जोधपुर परगने के गांव बोलेरये में था। यहां पुरोहितों का प्रभाव था। यहां महाराजा अमरसिंह के राज में पुरोहित रामानन्द साध हो कर बहुत बड़ा महन्त हुआ था। उसको बिरादरी वालों ने तो साध हो जाने के कारण जाति से बाहर कर दिया था लेकिन उसने बहुत से लोगों को चेला बनाकर अपना पंथ चलाया जिसका नाम रामावत हुआ। इस पंथ के साधु मारवाड़ में जगह-जगह मिलते थे और बोलेरये को अपनी जगह समझकर अक्सर वहां जाया करते थे। इनका धर्म वैष्णव था। यह

---

1 दस बातों को जो साधता था उसे साध कहा जाता था—

1 भद्र रूप रहना
2 तत मुद्रा धारण करना
3 तुलसी माला रखना
4 गोपी चन्दन का तिलक करना
5 राम और कृष्ण का जप करना
6 जनेऊ पहनना
7 चोटी रखना
8 कमण्डल का जल पात्र रखा
9 सफेद कपड़े पहनना
10 गुरु के वचनों का पालन करना।

सीतारामजी को मानते थे और उनको पूजते थे। जोधपुर शहर में इनके मंदिर फतहसागर तालाब के पास एक छोटी-सी पहाड़ी पर पंचमंदिरयां के नाम से बने थे जिनको ध्यानदास और गोपालदास साधुओं ने बनाया था।

2 **ढूंढिया**—ये लोग मारवाड़ में जगह-जगह पर थे। मुंह पर कपड़ा बांधे रहते थे, कभी नहाते धोते नहीं थे। जीव मरने के डर से पानी भी बहुत कम काम में लाते थे। अपने तन को कम खाने, पीने और नींद न लेने से बहुत कष्ट देते थे। ढूंढियों का पंथ जतियों से निकला था। मारवाड़ में उनको थानक नाम से पुकारा जाता था।

3 **फकीर**—मारवाड़ में फकीर को सांईजी कहते थे। इनको मुसलमान पूजते थे। इनका दूसरा नाम सूफी भी था। सूफी उसको कहते थे जिनका लगाव बिल्कुल संसार से नहीं होता था और जिनकी फकीरी सिद्ध हो जाती थी उनको 'वली उल्लाह' कहते थे जिसका अर्थ भगवत् भगत से था। मुसलमानों में फकीरी के ज्ञान को 'तसव्वुफ़' कहते थे। उनके मुख्य नियम यह थे—

1 हरदम अल्लाह का जिक्र करना अर्थात् परमात्मा का नाम जपना जिससे दिल साफ रहे।

2 हबसनफस (प्राणायाम)।

3 हर एक चीज में नजर आवे खुदा को देखना और ढूंढना।

4 लज्जात-दुनियावी अर्थात् संसारिक विषय भोग से दूर रहना और कभी उसका ध्यान भी न करना।

5 'फनाफील्लाह' (ईश्वर में लीन) हो जाना।

यह कहा जाता था कि यह इल्म भी मुसलमानों के पैगम्बर मोहम्मद साहिब से निकला था। उससे हज़रत अली को पहुंचा, फिर उनके बेटे इमाम हसन और हुसैन से उनके मुरीदों (चेलों) में फैला जिनके दो से चार घराने हो गये जो चार सम्प्रदाय के समान थे। इनके नाम थे—

1 चिशतिया	2 कादरिया
3 सोहरवरदिया	4 नक़शबंदिया

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के चेलों में से सूफी हमीदुद्दीन नागोर में आकर रहा। यह बड़ा त्यागी था इसलिए यह सुलतानुलतारकीन (त्यागी राज) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मारवाड़ में इसको तारकीन जी कहते थे। कादरिये और नकशबंदि मारवाड़ में कम थे। सोहरवरदियों की संख्या भी बहुत कम थी।

चारण

चारणों को समाज में विशेष स्थान था। अनेक राजा महाराजाओं ने चारण कवियों को उनकी कविताओं से प्रसन्न होकर पर्याप्त दान

दिया। चारण और भाट अपने स्वामी के लिये युद्ध में अपने प्राणों की बाजी भी लगा देते थे। अहमदाबाद के युद्ध में रोहडिया, बारहट, पदवाडिया सांदू, खिडिया आदि अनेक गोत्रों के चारणों ने भाग लिया था और अपने प्राणों को सहर्ष न्यौच्छावर किया था।[1] चारण मारवाड़ और रजवाड़ों में बहुत ज्यादा थे। इनकी जमीन पर कोई लाग-बाग राज की नहीं होती थी। ये लोग राजाओं के कुर्सीनामे लिखते थे और मरजीदान होकर मुसाहिब तक बन जाते थे। अपना दबदबा पूरा जमा लेते थे। दुःख की हालत में राजाओं को तसल्ली देते और सुख में उनकी खुशी बढ़ाते थे। इनका नाम मवेशियों के पालने और चराने से चारण हुआ।

चारणों में बहुत कम ऐसे चारण होते थे जिनको थोड़ी बहुत कविता करना आता हो। इन लोगों की भाषा डिंगल होती थी क्योंकि राजपूत लोग डिंगल भाषा को जल्दी समझते थे। चारण राजपूत राजाओं को अपनी कविताओं के द्वारा खुश करते थे और विशेषकर जब राजपूत राजा शराब या अफीम के नशे में मग्न होते थे तो उस समय चारण अपनी कविताओं के चमत्कार से राजाओं, सरदारों को प्रफुल्लित करके उनके मनों में अपनी जगह बढ़ाया करते थे। चारणों के बिना राजाओं और सरदारों की महफिल नहीं जमती थी। राजपूत राजा इन चारणों की बहुत कदर करते थे और इन्हें ताजीमें देते थे। जोधपुर नरेश महाराजा अभयसिंह ने भी कविया करणीदान को लाख पसाव दिया था और जोधपुर से मंडोर तक जहां उसका डेरा था उसको पहुंचाने आया था। इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

अस चढियो राजा 'अभो', कवि चाडे गजराज
पोहर एक जलेब में, मोहर हले महाराज

(अर्थात् स्वयं अभयसिंह तो अश्वारूढ़ हुए और कवि (करणीदान कविया) को हाथी पर चढ़ाया, इस प्रकार एक पहर तक महाराजा कवि की जलेब (अर्दली) में (उनके डेरे तक पहुंचाने) चला)।

1 **रावल**—ये चारणों के भांड थे और इनके लिए तरह-तरह के तमाशे और नकलें करते थे। इनके घर सोजत और जेतारण के परगने में थे।

2 **भाट चारण**—यह जाति भाट और चारणों के मेल से पैदा हुई थी। इनके घर गुजरात में अधिक थे और कुछ लोग मारवाड़ में रहते थे।

गाने बजाने वाली जातियां

गाने बजाने वाली जातियां कई प्रकार की पाई जाती थीं जिनमें से मुख्य जातियां निम्नलिखित हैं—

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 3, पृ. 166-172

1 **ढोली**—ढोली नाम ढोल बजाने के कारण हुआ। इन्हीं में जो नक्कारा बजाते थे वे नक्कारची कहलाते थे।

2 **ढाढ़ी**—यह भी एक जाति ढोलियों की तरह थी परन्तु इतना अन्तर था कि ढोली तो ढोल बजाते थे और ढाढ़ी सारंगी। इनका कहना था कि श्री रामचन्द्र जी का जन्म हुआ तब भी इनकी जाति वालों को बधाई मिली थी।

3 **मिरासी**—यह भी डोम होते थे क्योंकि इनकी और ढोलियों की खांपें मिलती थीं। मिरासी इनका नाम मुसलमानों ने रखा था। मिरासी अरबी शब्द है। इसका अर्थ बाप-दादों की बापोती पाने वाले से लगाया जाता है। इनकी बापोती गान-विद्या थी, जिसको यह लोग पीढियों से करते आये थे।

4 **डोम या डूम**—डोम हिन्दू भी होते थे और मुसलमान भी। हिन्दू ढोली नकारची और मुसलमान मिरासी कहलाते थे। मारवाड़ के डोम बहुत गरीब थे और गरीबी में ही गुजर करते थे।

लिखने वाली या मुत्सद्दी जातियां

मर्दुम शुमारी के अनुसार इस वर्ग में कायस्थ, खत्री और ओसवाल जाति के लोग शामिल थे। कायस्थों का लिखने का या मुन्शी का पेशा था परन्तु खत्रियों का पेशा मुत्सद्दी नहीं था। इसी प्रकार ओसवाल कुछ रियासतों में मुत्सद्दी का काम करते थे। मारवाड में ज्यादा राज के नौकर थे जिन्होंने अपना नाम मुत्सद्दी रख छोड़ा था। सरावगियों में भी कुछ लोग कलम पकड़ते थे। मारवाड़ में पुष्करणे ब्राह्मण भी यह पेशा करते थे।

व्यापार करने वाली जातियां

इन जातियों में केवल वाणिज्य और व्यापार से गुजारा करने वाले ही थे जैसे—

1 व्यापारी 2 परचून वेचने वाले

1 **व्यापारी**—इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। हिन्दू बनिये महाजन कहलाते थे और मुसलमान तुरकिये बोहरे। बनिया नाम बनिज करने से हुआ और महाजन खिताब था जिसका मतलब बड़े आदमी से था। ऐसे ही सेठ और शाह बड़े महाजनों को कहते थे। बनिया ओछा नाम था, इससे ओछा नाम किराड़ और लेड़ा था

2 **सरावगी**—यह कहा जाता है कि सरावगी का अर्थ सुरा से अविज्ञा करने वाले से है। नीमिनाथ तीरथंकर[1] के विवाह में 84 गांव के जादों क्षत्री

---

1 नीमिनाथ श्रीकृष्ण के भाइयों में से द्वारिका का राजा था। वह जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की बेटी से विवाह करने के लिए गया था। वहां शराब के पास हजारों कीड़े पड़े देखे और बहुत से जानवर झटका करने के वास्ते खड़े देखे तब उसके मन में वैराग उपज गया और संसार को उसने त्याग दिया।

सुरा अर्थात् शराब से अग्नि अर्थात् नफरत करके जैनी हो गए जिससे उनका नाम सुराअग्नी रक्खा गया जो बाद में बिगड़ कर सरावगी हो गया। बहुत से व्यक्ति मारवाड़ आकर बस गए और वे खंडेलवाल सरावगी कहलाए।

सरावगी और ओसवालों के मत में भेद है। ओसवाल तो श्वेताम्बरी आमनाय को मानते हैं और सरावगी दिगम्बरी आमनाय को मानते थे।

3 **पोरवाल**—पोरवाल दक्षिण मारवाड़ में अधिक थे। इनका ओसवालों से सगपन तो नहीं होता था परन्तु खाना साथ खा लेते थे। ये भी श्वेताम्बरी आमनाय को मानते थे। इनमें भी ओसवालों की भांति राठौड़, पंवार और सोलंकी इत्यादि राजपूतों की जातियां थीं।

4 **अग्रवाल**—अग्रवाल महाजन अपनी वंश परम्परा क्षत्रियों से मिलाते थे। मारवाड़ में यह लोग भिवानी नामक स्थान (हरियाना) से आए थे। अधिकांश अग्रवाल दुकानदारी का धन्धा करते थे।

5 **तुरकिया बोहरे**—यह मुसलमान थे और मारवाड़ में सिद्धपुर-पट्टन के इलाके गुजरात से आये थे। जोधपुर, पाली, भीनमाल और बड़गांव परगने जसवन्तपुरे में दुकानें करते थे। इनका धर्म शीआ दाऊदी था।

6 **परचून बेचने वाले बिसायती या व्यापारी**—मारवाड़ में बिसायती को व्यौपारी बोलते थे जो फुटकर चीजे बेचते थे। इनको 'माल मणिहारी' भी कहते थे। यह अपने को सैय्यद बताते थे। इनमें और कौमों के मुसलमान भी शामिल थे जैसे शेख, कुरेशी और अन्सारी इत्यादि। ये लोग पहले घोड़ों का व्यापार करते थे और सौदागर कहलाते थे। फिर उसमें फायदा न देखकर मणिहारी माल बेचने लगे तो ये व्यापारी कहलाने लगे। इसके पश्चात् इन्होंने अपना नाम बिसायती रख लिया। बिसायती अरबी शब्द था जिसका अर्थ बाजार में बिछोना बिछाकर फुटकर चीजें बेचने वाले से है।

अन्य कार्य करने वाली जातियां

1 **सुनार**—मारवाड़ में स्वर्ण के कलाकार सुनार कहलाते थे। ये भी 3 प्रकार के थे—(अ) मेड़ (ब) बामणिया (स) नियारिया।

2 **कसेरा**—ये तांबा, पीतल और कांसा इत्यादि के कलाकार एवं व्यवसायी होते थे।

3 **लखेरा**—चूड़ियों के निर्माता और लाख के व्यापारी लखेरे कहलाते थे।

4 **खाती**—लकड़ी का काम करने वाले खाती कहलाते थे।

5 **रंगरेज**—ये कपड़े पर लहरिये की रंगाई करते थे।

6 **पिंजारा**—रुई धुनने के व्यवसायी पिंजारा कहलाते थे।

7 **कलाल**—ये शराब के व्यवसायी होते थे।

8 **कसाई**—मांस के विक्रयकर्त्ता कसाई कहलाते थे।

9 **घोसी**—ये दूध का विक्रय करते थे।

10 **रहबारी**—ऊंटों के पालनकर्त्ता रेहवारी कहलाते थे।

11 **कुम्हार**—मिट्टी के बर्तनों के बनाने वाले को कुम्हार कहते थे।

12 **तेली**—तिलों से तेल निकालने वाले व्यवसायी तेली कहलाते थे।

13 **मोची**—चमड़े को रंगना, पकाना और इससे वस्तुओं का निर्माण करने वाले व्यवसायी मोची कहलाते थे।

14 **धोबी**—ये कपड़े धोने का व्यवसाय करते थे।

15 **गोला**—दासों का मारवाड़ में उपनाम गोला था।

16 **बेलदार**—खुदाई करने वाले वेलदार कहलाते थे।

17 **सिलावट**—पत्थर के कलाकार सिलावट कहलाते थे।

18 **तम्बोली**—पान एवं सुपारी के विक्रयकर्ता तम्बोली कहलाते थे।

19 **जुलाहे**—कपड़ा बुनने वाले जुलाहे कहलाते थे।

20 **नाई**—बाल काटने व शादी-विवाह में बुलावा देने वाले नाई कहलाते थे।

21 **भंगी**—भंगी को मारवाड़ में महतर भी कहते थे। इनका कार्य कूड़ा-करकट (गन्दगी) व मल-मूत्र की सफाई करना था।

वर्ण पद्धति

मारवाड़ के समाज के संगठन की वर्ण पद्धति में कुछ ढीलापन इस काल में आ गया था जिसके परिणामस्वरूप समाज के ढांचे में दो प्रकार की प्रवृत्तियां दिखाई देने लगीं। पहली प्रवृत्ति में सामाजिक प्रधानता और गौणता जातियों से समझी जाने लगी। प्रत्येक वर्ग में विभिन्न उपवर्ग और उपजातियां बन गईं जिनमें आपस में सामाजिक और धार्मिक रीतियां एक दूसरे को बांधने लगीं। उन उप-विभागों और जातियों का अन्तरजातीय विवाह, खानपान और अन्य आपसी सम्पर्क होने के निमय मुख्य रूप से परम्परागत रहे। ऐसी स्थिति में एक जाति और दूसरी जाति के बीच स्थायी रूप से सामाजिक खाई बनी रही। इस पद्धति के अन्तर्गत जातियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे उन्हीं व्यवसायों को अपनायें जो धर्म द्वारा स्वीकृत थे।

दूसरी प्रवृत्ति विभिन्न जातियों को संगठित करके एक आर्थिक ढांचे का रूप बना रही थी। इसके अन्तर्गत व्यवसाय ही मुख्य रूप से जाति के प्रतीक नहीं थे वल्कि वे आपसी निर्भरता पर आधारित थे। जैसे एक ब्राह्मण अपने परम्परागत व्यवसाय के साथ यदि कृषि करता तो कोई बुरा नहीं

अनुशासनहीन थे, वे डकैती करना, अफीम व शराब का सेवन करना अपना मुख्य कार्य मानते थे। जिन राजपूतों के पास भूमि नहीं थी वे बच्चों की जल्दी शादी और स्वयं की खराब आदतों के कारण हमेशा पैसे की कमी का अनुभव करते थे और गरीबी में जीवन व्यतीत करते थे।

महाजनों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था और अधिकांश मन्त्री इन्हीं में से नियुक्त किये जाते थे। इन्हें मुतसद्दी के नाम से पुकारते थे जो आन्तरिक प्रशासन और महाराजा का मुगलों से सम्बन्ध बनाये रखने का कार्य करते थे। इनमें से कुछ तो फौज बक्शी के ओहदे पर रहे थे। बहुत से हाकिम, दीवान, मुसाहिब, दरोगा, वकील और कामदार इसी जाति में से होते थे।

जातियों के बीच इस बात के नियम थे कि कौन-सी जाति के हाथ का बना भोजन खाया एवं पानी पिया जा सकता था। पक्का खाना जो घी, दूध या मक्खन का बना हुआ होता था वह गौण जातियों से ग्रहण किया जाता था लेकिन कच्चा खाना एक जाति दूसरी समान जाति से ही या प्रधान जाति से ग्रहण करती थी। लेकिन जो भोजन भगवान पर चढ़ाया जाता था चाहे वह किसी निम्न जाति का ही क्यों न हो, ग्रहण किया जा सकता था।[1] मारवाड़ में हुक्का पीना जाति के स्तर का प्रमाण था।[2]

कुछ सामान्य जाति-विभेद इस प्रकार के थे कि आपस में एक बड़ी जाति वाले व्यक्ति को दूसरी जाति वाले व्यक्ति से अलग रखते थे जैसे एक उच्च जाति वाला निम्न जाति वाले को छूता नहीं था। गांव के नाई और धोबी अछूतों को अपनी सेवायें नहीं देते थे और इसलिए अछूतों को अपने आप हजामत व कपड़े धोने का काम करना पड़ता था। अछूत हिन्दुओं के कुओं से पानी नहीं ले सकता था।

सामाजिक जीवन का सामूहिक आधार

इस प्रकार के जाति विभेद के अतिरिक्त मारवाड़ के लोगों का सामाजिक जीवन सामूहिक आधार पर संगठित था। किसी भी जाति के जीवन में ऐसे अवसर अनिवार्य थे जबकि दूसरी जाति का सहयोग आवश्यक हो जाता था। ब्राह्मण जन्मपत्री बनाता और नाई संदेशवाहक का काम करता और जीमन में खाना खिलाने का भी काम करता था। अछूत लकड़ी काटते, मकान धोते, अनाज साफ करते थे। कुम्हार बर्तन बनाते और बेचते थे। सुनार जेवर बनाता था और तेली तेल तैयार करके देता था। ब्राह्मण पुजारी का काम

---

1 केवनडिश का मड्ढोक के नाम पत्र, जनवरी 22, 1831, आर. ए. जोधपुर, फाईल नं. 2

2 वही, ओल्ड फाइल नं. 2

[illegible] था । इस प्रकार बहुत से पर्व और उत्सवों में भी विभिन्न जातियों का आपसी सहयोग रहता था ।

निष्कर्ष

इस अध्याय में अभयसिंह के समय में पाई जाने वाली विभिन्न जातियों का विवरण दिया है । इस काल में वर्ण पद्धति होने से समाज के संगठन में कुछ ढीलापन आ गया था । व्यवसाय ही मुख्य रूप से जाति का प्रतीक नहीं रहा और जाति की मान्यता पैदाइश के आधार से कम होने लग गई थी । जाति संकीर्णता भी बढ़ने लगी थी । जातियों के बीच के आपस में खान-पान का निषेध था और हुक्का पानी जाति स्तर का प्रमाण माना जाता था । परन्तु इस प्रकार के जाति-विभेद होते हुए भी इस समय के लोगों का सामाजिक जीवन सामूहिक आधार पर संगठित था । किसी भी जाति के जीवन में ऐसे अवसर अनिवार्य थे जबकि दूसरी जाति का सहयोग आवश्यक हो जाता था

परिशिष्ट

मर्दुमशुमारी 1811 के अनुसार महत्वपूर्ण जातियां

'ए' क्लास

1 राजपूत
2 राठोड़
3 सीसोदिया
4 तंवर
5 भाटी
6 पंवार
7 पड़िहार
8 फुटकर राजपूत
9 दहिया
10 नातारयत राजपूत
11 जाट
12 मुसलमान राजपूत
13 देसवाली मुसलमान
14 क्यामखानी
15 नायक
16 माली
17 राजपूत या गोली माली
18 विश्नोई
19 खारडिया
20 पहाड़ी कौमें
21 मेणे
22 गिरासिया
23 मेवाती, मेर

'बी' क्लास

24 ब्राह्मण
25 पुष्करणा
26 पुरोहित
27 राजपुरोहित
28 गौड़
29 पारीक
30 फुटकर ब्राह्मण
31 सिरमाली
32 व्यास
33 पोल के पुरोहित
34 बोहरा
35 कल्ला
36 दाहिमा
37 सारस्वत
38 खण्डेलवाल
39 पल्लीवाल
40 डाकोत
41 सांचोरा
42 सैय्यद
43 सरावगी
44 पोरवाल
45 जोगी

46 मसानिया

47 रावल

48 रामावत

49 दादू पंथी

50 ओसवाल

51 अग्रवाल

52 खटदर्शन

53 ढूंडिया 22 ढोला

54 साध

55 फकीर

56 कादरिया

57 चारण

58 गाने बजाने वाली कौमें

59 चिश्तिया

60 रोहडिया

61 रावल

62 भाट

63 डोम

64 ढोली हिन्दू

65 ढोली मुसलमान

66 मीरासी

67 खत्री

'सी' क्लास

68 व्यापार करने वाली कौमें

69 महाजन

70 सरावगी

71 तुरकिया वोहरे

72 विसायती व्यापारी

'डी' क्लास

73 सुनार

74 नाई

75 लुहार

76 खाती

77 मणियार

78 कलाल

79 तेली

80 चेजारा

81 धोबी

82 रेवारी या राईका

83 घोसी

84 तंबोली

85 कुम्हार

86 मोची

87 कसाई

88 पिंजारा

89 भंगी

अध्याय 4

मारवाड़ की विभिन्न जातियों के रीति-रिवाज

परिचय

महाराजा अभयसिंह के समय में मारवाड़ में विभिन्न जातियां निवास करती थीं। इनके विभिन्न रीति-रिवाज थे जो एक दूसरे से मिलते भी थे और विभिन्न भी थे परन्तु विभिन्न जातियों के अपने रीति रिवाजों की कुछ अपनी विशेषताएं भी थीं। इन सबका उल्लेख संक्षिप्त रूप में इस अध्याय में हम कर रहे हैं।

राजपूतों के रीति-रिवाज

1 राजपूत नरेशों में विवाह की रीति—विवाह के समय अनेक उत्सवों का आयोजन होता था। सारे शहर को सजाया जाता था। बारात के आने पर वधू पक्ष वाले सामने आकर बारात का स्वागत करते थे। लग्न के रूप में वर के हाथ में नारियल दिया जाता था जो सोने द्वारा मण्डित होता था। तोरण मारने की क्रिया भी मांगलिक कृत्य के रूप में सम्पन्न की जाती थी।[1] सोने, चांदी और मिट्टी के कलश विवाह वेदी के चारों तरफ सजाए जाते थे एवं वेदी के निर्माण में हरे बांसों का प्रयोग होता था।[2]

विवाह वेद मन्त्रों के उच्चारणों द्वारा कुण्ड के पास सम्पन्न होता था।[3] दहेज देने की प्रथा परम्परानुसार होती थी। बारात लौटने पर मंगल कलशों द्वारा वर वधू का स्वागत होता था।[4] कुंकुम, हल्दी एवं केसर की वर्षा की जाती थी। वधू सास को पालायण (पद वंदना) करती थी।[5] विवाह के पश्चात् वर को जुए का खेल खिलाया जाता था जिसमें छाछ में कोड़ी, मुद्रिका एवं छुहारा आदि डालकर उन्हें मुद्रिका को ढूंढने को कहा जाता

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 32
2 वही, भाग 1, पृ. 31
3 वही, भाग 1, पृ. 32
4 वही, पृ. 36
5 वही, पृ. 38

था। यदि अधिक बड़ा आदमी होता तो घोड़े, रुपये और अशरफी भी भेजता था।, घर के नौकर-चाकरों के लिये भी अलग से रुपये और कपड़े आदि आते थे और यदि किसी की आर्थिक स्थिति कमजोर होती थी तब वह एक रुपया और नारियल ही देकर सगाई की रस्म पूरी कर देता था।

वर का पिता अपने घर अफीम गलाकर भाई बंदों एवं सगों और दोस्तों को बुलाता था और गुड़ बांटता था। उस समय सबके सामने ब्राह्मण वर के तिलक करके टीके का सामान उसको दे देता था।

टीका लाने वाले को वर के पिता की ओर से गोठ दी जाती थी और सीख देते समय बड़े आदमियों को सिरोपाव और नाई-चाकरों को इनाम मिलता था। यदि कोई वधू का रिश्तेदार उनके साथ होता तब उसके ऊपर रुपये न्यौछावर करके उसके चाकरों को देते थे। इसी प्रकार वह वर और उसके पिता के ऊपर न्यौछावर करता था।

टीके के साथ वधू के रिश्तेदारों के आने का रिवाज तो नहीं था परन्तु चाचा, भाई या और अन्य रिश्तेदार आ सकता था परन्तु पिता नहीं आता था।

राजपूतों में सगाई एक बार होने के पश्चात् फिर नहीं छूटती थी। इसके लिये यह कहा जाता था 'परणी छूटे मांग नहीं छूटे'।

शादी की आयु—सगाई के पश्चात् ब्याह होने के लिये कोई समय निश्चित नहीं था। मगर छोटी उमर में ब्याह कम करते थे। शादी के समय वर-वधू की आयु 16 वर्ष से 20 वर्ष तक होती थी। बचपन में ब्याह करने का रिवाज जैसा बनियो और ब्राह्मणों में होता था राजपूतों में वैसा नहीं था।

सावा या साहा—शादी के लिए वधू का पिता वर के पिता से लिखा पढ़ी या जबानी बातचीत करके ब्राह्मण से सावा निकलवाता था और उसको कागज में लिखकर एक नारियल सहित, जो बड़े शहरों में चांदी सोने से मढा जाता था, वर के पिता के पास भेज दिया जाता था, इसको लगन कहते थे।[1] लगन भेजने के वास्ते भी यह शर्त नहीं थी कि ब्याह के इतने दिन पहिले ही भेजा जावे। कभी 10 दिन, कभी 5 दिन और कभी 15 दिन पहले भी भेजते थे। कभी नहीं भी भेजते थे, केवल सावा निकलवा कर देते थे कि फलाने दिन शादी करने के वास्ते आ जाना।

बिंदोले बैठाना—जब लगन पहुंचता था तो वर का पिता अपने बेटे को बींद बनाता था। इसको बिंदोले बैठाना कहते थे। इसका भी कोई निश्चित समय नहीं होता था। शादी के 10 या 5 दिन पहले भी बैठाते थे और 2 या 4 दिन पहले। यह दिन वर के बहुत लाड़-प्यार और बनाव-सिंगार में

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 31

बींनते थे। उनके प्रतिदिन पीठी या उबटना लगाकर हार फूल पहिनाते और पान मेवा खिलाते थे। भाई-बंद और साथी उनको और उनके घरवालों को गाने बाजे के साथ अपने घर बुलाकर गोठ देते थे। जो गरीब आदमी होता था वह अकेले वर या एक नाई और चाकर के साथ बुलाता था।

कुंकुम पत्री—वर और वधू के पिता अपने भाई-सगों और मेल-मिलाप वालों को रंगीन या चांदी सोने के छींटे लगे हुए कागज पर चिट्ठी, जिसको कुंकुम पत्री कहते थे, लिखकर शादी के समय सम्मिलित होने के लिए बुलाते थे।

तेल चढाना—व्याह से 2-4 या 5-7 दिन पहिले वधू के घर की दूरी देखकर वर के तेल चढ़ाते थे। कोई कोई बेटी वाला ज्योतिषियों से पूछकर तेल चढाने की गिनती भी लिख देता था कि इतनी बार तेल चढाया गया। पांच या सात सुहागिन औरतें मिलकर नहलाते समय वर के बदन में तेल मसलती थीं और उस समय के गीत या तो वे खुद या ढोलनें और नायणें गाती थीं।

कांकण डोरा—तेल चढाने के पश्चात् कांकण डोरा वर और वधू के दाहिने हाथ और पांव में बांधते थे। वह मोली को बटकर बनाया जाता था जिसमें एक मेंदल, जो छोटा-सा फल होता है, छेदते थे। मरोड़ फली और एक दो छोटे-छोटे लाख एवं लोहे के छल्ले बांधते थे। ऐसा ही एक जोड़ा कांकण-डोरे का बनाकर वधू के लिए भी वरी के साथ ले जाते थे।

न्योता—कांकण डोरा बांधने के पश्चात् वर को बाहर लाकर चौकी या पाटिये के ऊपर बैठाते थे। उस समय रिश्तेदार, दोस्त, नौकर-चाकर, इत्यादि जो शादी में आकर शामिल होते थे, न्योता देते थे। यह रोकड़ 1) रु. से लेकर 100) रु. तक, जैसा जिसका व्यवहार और हैसियत हो, देता था। यह न्योता आपस में व्याह शादी के मौके पर दिया-लिया जाता था।

गोठ—न्योते के दिन सब लोगों को वर का पिता गोठ या खाना देता था।

जान अर्थात् बारात—फिर बारात चढ़ती थी। वर को घोड़े, ऊंट या तांगे पर बैठाकर ले जाते थे। यदि कोई बड़ा ठिकाणा होता तो हाथी भी ले जाते थे।

सेहरा या मोड़—बारात चढते समय वर के सिर पर फूलों का सेहरा या मौड़ बांधते थे जो कागज, कपड़े और झूठे या सच्चे मोतियों का बना होता था।

वरी—बारात के साथ वधू के लिये जो कपड़ा इत्यादि ले जाते थे उसको वरी कहा जाता था। वरी में यह चीजें होती थीं—

1 घाघरा (लहंगा) गोटा और किनारी लगे हुये—चार

2 साड़ी केसरिया जिसमें कोर गोटा लप्पा लगा होता था—दो
3 दुप्पट्टा जरी के काम का—एक
4 चूंदड़ी कोर गोटा लगी हुई—एक
5 कांचली गोटे और जरी की—चार
6 चूड़ा हाथी दांत का—एक जोड़ा
7 जूता कामदार—एक जोड़ी
8 अत्तर की शीशी
9 कुंकुम, मेंहदी, रंग और छडीला इत्यादि के चार पूडे।
10 नारियल—चार
11 मेवा, मिश्री
12 वधू के लिए मौड़—एक

जो व्यक्ति इतना सामान ले जाने के लिए समर्थ नहीं थे वे केवल दो जोड़े और बाकी सब सामान थोड़ा 2 ले जाते थे।

गहना चढाने का रिवाज नहीं था। गहना बेटी का पिता देता था और यदि वह न देता तो वधू को अपने घर लाकर पहनाया जाता था।

पड़जान—जब बरात वधू के घर से आधा मील के करीब तक पहुंच जाती थी तब उसको लेने के लिए वधू के भाई या अन्य रिश्तेदार ऊंट, घोड़ों पर चढ़ कर आते थे[1] उसको पड़जान कहते थे। वर का पिता इसके लिए रास्ते में ठहर जाता था, फिर सबसे मिलकर अफीम और शराब की मनवार करता था। इसके बाद में सब मिलकर गांव आते थे।

सामेला—गांव के बाहर या अन्दर कुछ दूर तक वधू का पिता भी सामने आता था उस जगह दोनों तरफ से जाजम बिछ जाती थी और वर-वधू बींदणी के पिता दोनों बराबर बैठकर अफीम तथा शराब की मनवार करते थे। वर घोड़े पर चढ़ा रहता था। वधू का पुरोहित एक थाल लेकर आता था और वर के तिलक करता था। वर का पिता रुपया, अशरफी अपनी श्रद्धा के अनुसार उस थाल में डालता था। वे वधू के पिता के लगते थे। लेना या न लेना उसकी मरजी पर था। इस बीच में बरी वधू के घर पहुंच जाती थी।

तोरण बांधना—वहां से वर तोरण बांधने के लिए वधू के घर जाता था और घोड़े पर चढा-चढा ही तोरण के बरछी मारता था। जो सुतार तोरण लाकर बांधता था उसको वर की ओर से इनाम कम-से-कम सवा रुपया और अधिक, जहां तक बन सके, दिया जाता था। तोरण रंगीन लकड़ियों का बनाया जाता था और उसकी शक्ल मुकुट जैसी होती थी।

पोल-पात बारहट—तोरण मारते समय वधू के पोल-पात बारहट को नेग दिया जाता था। यह अधिक से अधिक एक घोड़ा और कम-से-कम

कांकरण डोरा और मोड ब्राह्मण या ब्राह्मणी कुलदेवी के सामने बांधकर चंवरी में लाई जाती थी और वर-वधू के गठ-जोडा बांधती थी। सोने चांदी और मिट्टी के कलश चंवरी के चारों ओर सजाये जाते थे और चंवरी के निर्माण में हरे बांसों का प्रयोग किया जाता था।[1]

कोरपाण अर्थात् विना धोये कपड़े पहनाकर फेरे करने का दस्तूर राजपूतों में नहीं था।

होम और फेरे—फिर ब्राह्मण गणेश, कुलदेवी इत्यादि देवताओं और सूर्यादि नव ग्रहों का पूजन करके होम करता था। इस समय अन्य जातियों में वधू का पिता हाजिर रहकर पूजन करता और वर को कन्या दान देता था परन्तु यह रिवाज राजपूतों में नहीं था। मर्द बाहर रहते थे, भीतर तो सिर्फ वर-वधू या औरतें होती थीं।

होम के पश्चात् ब्राह्मण हतलेवा जोड़कर वर-वधू को चार फेरे आग के चारों तरफ फिराकर दिलाता था। तीन फेरों में तो वधू आगे होती थी और चौथे फरे में वर आगे हो जाता था। उस समय ब्राह्मण मन्त्र पढ़ता था और विवाह वेद मन्त्रों के उच्चारण के द्वारा यज्ञ-कुण्ड के पास सम्पन्न होता था[2] और स्त्रियां यह गीत गाती थीं—

पहले फेरे वावा री दूजे फेरे भुआ री भतीजी
तीजे फेरे मामा री भानजी चौथे फेरे धी हुई रे पराई

(अर्थात् विवाह के प्रथम फरे में लड़की वावा की कहलाती है, दूसरे में भुआ की भतीजी, तीसरे में मामा की भानजी तथा चौथे फेरे में लड़की पराई हो जाती है।) चौथे फेरे के पश्चात् वेटी पराई मानी जाती थी। इस समय वधू के पिता, काका, मामा इत्यादि को खवर करते थे। उनको जो देना होता था वह भेज देते थे या देने के वचन कहला भेजते थे और यह सव माल वधू का होता था। वर को भी जो कुछ मांगना होता है वह इस समय मांग लेता था। फिर हथलेवा छुड़ाया जाता था। विवाह वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ यज्ञकुण्ड के पास सम्पन्न होता था।

वधू का जान में जाना– इसके पश्चात् कुछ समय के लिए वधू को वारात के डेरे में ले जाया जाता था। वह वहां कुछ समय रुककर वापिस आ जाती थी।

कंवारा भात—फेरों से पहिले वधू के घर वारातियों के लिये गुड़ की लापसी, जिसको कंवारा भात कहते थे, भेजी जाती थी।

त्याग—दूसरे दिन वर का पिता चारणों और भाटों को दक्षिणा देता

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 32
2 वही, पृ. 32

पर बैठाकर पूजा कराने का रिवाज राजपूतों में नहीं था।[1]

जब बच्चा पैदा होता था तब उसको जन्म घूंटी किसी बड़ी बूढ़ी औरत के हाथ से दिलाई जाती थी। अन्य राजपूतों में यह दस्तूर था कि मर्द जाकर घूंटी देते थे। राठौड़ों में यह रिवाज नहीं था।[2]

महीना सवा महीना पश्चात् ब्राह्मण द्वारा नाम संस्कार किया जाता था। भाई बन्धों को बुलाकर खुशी करते थे। शराब पीते एवं नाच कराते थे और अफीम गलाकर गांव वालों को बांटते थे।

झडूला—जब बच्चा 2-3 वर्ष का होता था तब उसके बाल उतारते थे। जिनके जात बोली हुई होती थी वे कुलदेवी के स्थान पर जाकर बाल चढ़ाते थे।

4 **गमी की रस्में**—जब कोई मरता था तो उसे जमीन पर ले लेते थे। यदि कोई ज्यादा खर्च करने का विचार करता तो मुर्दे को बैठा देते थे और उसकी बैकूंठी निकाली जाती थी।

बैकूंठी—बैकूंठी लकड़ी की बनाई जाती थी जिसमें मृतक को बैठाते थे। श्मशान में लेजाकर उसे चिता पर लिटा देते थे। आग बेटा या नजदीकी भाई-भतीजा देता था जिसको लांपा कहते थे। राजाओं में अक्सर पुरोहित आग देता था।[3]

मोसर—मोसर करने का विचार होता था तो भद्दर कराते थे। राजाओं और जागीरदारों में पाटवी बेटा को भद्दर होना पड़ता था परन्तु यह प्रथा इनमें कम थी। बड़े आदमियों के साथ जो नोकर-चाकर और कमीण भद्दर होते थे उनको मोसर के दिन पगड़ियां मिलती थीं।

बखेर—बैकूंठी के ऊपर बखेर भी करते थे। यह रुपये पैसे या कौड़ियों की होती थी। बखेर का पैसा टोटकों में बहुत काम आता था। उसको बच्चों के गले में डालते थे।

लोकाचार—मृतक के दाग में जाने को लोकाचार, जाने वालों को लोकाचारया और उठाने वालों को कांधिया कहते थे।

सातरवाड़ा—दाग हो जाने पर जब नहाकर आते तो जाजम बिछाकर बैठते थे। पर समय 12 दिन का होता था। इसको सातरवाड़ा कहते थे। बैठने आने वालों को अमल दिया जाता था।

फूल चुनना—तीसरे दिन श्मशान में जाकर मृतक की हड्डियां एवं अन्य

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 34
2 वही, पृ. 35
3 वही, पृ. 36

कम था। सीलसातम और दिवाली का त्यौहार भी ये लोग मनाते थे। ये लोग मामा और चाचा की बेटियों से विवाह नहीं करते थे।

जाटों के रीति-रिवाज

जाटों में केवल एक खोपरा और एक गुड़ के टुकड़े से सगाई पक्की हो जाती थी जिसे बेटी वाला लेता था और बेटे वाला देता था।[1] गुड़ देने के पश्चात् सगाई नहीं छूटती थी। जाटों में रोकड़ रुपया और गहने देने का रिवाज नहीं था। जिस प्रकार राजपूतों में अफीम पीने से सगाई पक्की होती थी उसी प्रकार जाटों में गुड़ लेने या खाने से सगाई पक्की होती थी। इस कारण जाट अपने भाई-बन्धों के घर गुड़ खाने से बहुत बचते थे क्योंकि जो कोई किसी भाई-बन्ध के घर गुड़ या गुड़ से बनी चीज खा लेता था तो उनके रिवाज के अनुसार खिलाने वाला अपने भाई या बेटे की सगाई हो जाने का दावा कर सकता था जिसे न्यात में भी सुन लिया जाता था और इस प्रकार मांग उसको देनी पड़ती थी।

1 **विवाह**—जाटों में विवाह ब्राह्मण कराते थे। देने और लेने का कुछ तय नहीं होता था। कुछ जाट तो बेटे वालों से खर्चा ही नहीं कराते थे और अपना पैसा लगाकर ब्याह कर लेते थे जिसे धर्म विवाह कहा जाता था। परन्तु कुछ बेटे वालों से रुपया लेकर विवाह करते थे।[2]

बारात को एक दिन लापसी बिना घी की जिमाते थे और दूसरे दिन मीठे चावल खिलाते थे।

मुकलावा—मुकलावे में दहेज ब्याह के बराबर ही दिया जाता था। यदि बेटी का पिता अच्छे घर से होता था तो वह कोथला भी कराता था।

कोथला—कोथले का रिवाज यह था कि बेटी का पिता अपने सब रिश्तेदारों को बुलाता था। बेटी व जमाई को गहना और 100/- रु. रोकड़ थाली में रख देता था। जमाई के भाई-बन्धों और रिश्तेदारों को सिरोपाव और उनकी स्त्रियों को वेस (कपड़ा) भी पहिनाता था। प्रथम सन्तान जाटों के यहां बेटी के पिता के घर होती थी। यदि पिता लड़की को नहीं बुलाता तो इसका ताना सारी उमर मां-बाप को दिया जाता था। जापे के बाद जब लड़की अपने ससुराल जाती थी तो उस समय भी उसके लिये, पति के लिये तथा अन्य घर वालों के लिये कपड़े दिये जाते थे।

नाता—नाता भी जाटों में होता था। नाते के समय विधवा के ससुराल

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 51

2 वही, पृ. 51

बैठाकर उसको चूरमा खिलाते थे, फिर उसे और नहलाया जाता था। उसके बदन पर चन्दन और केसर लगाई जाती थी। उसके बाद जनेऊ पहिनाकर उसे गायत्री मन्त्र सुनाया जाता था,[1] इसके पश्चात् वह लड़का अपने भाई बन्धों से, जो उस समय वहां होते थे, भीख मांगता था। वे सब लोग उसे रुपये, पैसे और नारियल आदि देते थे। फिर वह लड़का कहता था कि वह पढ़ने के लिये काशी जाता है और यह कहकर भागता था परन्तु उसके साथी और घर वाले उसे कुछ लालच देकर घर ले आते थे। यह नकल पुराने जमाने के उस रिवाज की है जिसके अनुसार लड़के विद्याध्ययन के लिए परदेश जाते थे। इस प्रकार जनेऊ धारण की रीति पूरी होती थी, इसके पश्चात् लड़का पूरा ब्राह्मण समझा जाता था।[2]

2 **सगाई**—सिरमाली सगाई अपने गोत्र में नहीं करते थे। मां का गोत्र पांच पीढी तक और यदि कोई नाना की गोद चला जाता तो सात पीढी तक गोत्र टालते थे। वर और वधू के माता पिता रिश्ते के लिये आपस में पहिले तय कर लेते थे, फिर एक अच्छा दिन देखकर वधू के घर वाले वर के घर आते थे। आने वालों में वधू का पिता नहीं होता था बल्कि बहन, भाई या चाचा होता था। यह रिश्तेदार वर के तिलक करने के पश्चात् कहते थे कि 'हम अपनी बेटी आपको गोबर चुगने के लिये देते हैं।' गोबर चुगने के वास्ते बेटी देने का मतलब सिरमालियों में यह समझा जाता था कि सगाई पक्की हो गई है।[3] फिर भाई बन्दों में गुड़ बांटा जाता था। सिरमालियों में सगाई पक्की नहीं समझी जाती थी यद्यपि राजपूतों में यह कहा जाता था कि 'मांग नहीं छूटे परणी भले ही छूट जाओ' अर्थात् एक बार सगाई होने पर छूट नहीं सकती, चाहे विवाहिता पत्नी छूट जाये। परन्तु सिरमालियों में यह कहा जाता था कि 'तोरण आयो बींद पाछो जावे' अर्थात् तोरण पर आया हुआ बींद (वर) भी वापिस जा सकता है। परन्तु ऐसा बहुत कम होता था और यदि हो तो भी बुरा नहीं समझा जाता था।[4]

3 **विवाह**—विवाह का दिन अच्छा मुहूर्त देखकर निकाला जाता था और उस दिन पहले वर तथा वधू को बनोले बैठाते थे। बनोले बैठाने का यह रिवाज था कि उस दिन सुबह वधू के घर से एक औरत वर के घर आती थी और कहती कि 'मैं तुम्हारे घर आंगण लीपने आई हूँ।'[5] परन्तु घर की

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 145
2 वही, पृ. 146
3 वही, पृ. 146
4 वही, पृ. 146
5 वही, पृ. 146

तोरण छूता था और इसके पश्चात् वह घर के अन्दर चंवरी में चला जाता था। जहां पर उसके घर की औरतें और वधू के घर की औरतें एकत्रित होकर हंसी मजाक करती थीं। इसके बाद वर अपने घर चला जाता था।[1]

11 वर घर पर आकर बैठने भी नहीं पाता था कि वधू के घर से चार औरतें आकर छोटे-छोटे बेलनों को वर के सिर, मुंह और हाथ पैरों से लगाती थीं, इसको पोखणा कहते थे।[2] इस समय कन्या के भाई लगन लेकर आते थे जिसमें विवाह का समय लिखा हुआ होता था।

12 बरणा—लगन आने के बाद वर पोशाक पहिनकर विवाह करने के लिये जाता था, उसके एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ में नारियल होता था। उसका पिता या चाचा अथवा भाई एक थाली लेकर जाता था जिसमें चांदी के जेवर, मिश्री एक पाव, सुपारी आधा सेर और 2) रु. और अन्य सुहाग का सामान होता था। औरतें पीछे-पीछे गीत गाती हुई जाती थीं। कन्या के घर पहुंचने पर वर की सास घर से बाहर आकर वर का नाक पकड़ती थी और नाक पकड़े हुए ही उसे घर के अन्दर चंवरी में ले जाया जाता था। यहां पर वधू का बाप वर के पैरों में पानी डालता और मां उसके पैर धोती थी, इसके पश्चात् एक आदमी घरकी छतपर चढ़कर मुहूर्त के बिसवे बोलता था जैसे एक बिसवा सावधान, दो बिसवा सावधान. जब 20 बिसवा सावधान बोलता तो उसी समय वर और वधू के हाथों को मिलाकर हथलेवा जोड़ते थे। फिर कन्यादान होता था तथा दोनों वर और कन्या हथलेवा जोड़े हुए ही चंवरी में आते जहां हवन होता था और 4 फेरे अग्नि के लिये जाते थे। तीन फेरों में वधू आगे और चौथे में वर को आगे किया जाता था। इसके पश्चात् हथलेवा छुड़ा दिया जाता था। इस प्रकार विवाह की रस्म पूरी होती थी।[3]

13 गमी की रस्म—सिरमाली मुर्दे का बहुत सोग मानते थे। यहां तक कि परदेश से मृत्यु का पत्र आने पर भी नहाते थे।[4] ये मुर्दे को बहुत जल्दी जला देते थे, चाहे रात को ही मौत क्यों न हुई हो। अन्य जातियों की तरह सुबह तक मुर्दे को घर में नहीं रखते थे।

वैसे तो यह लोग बहुत मितव्ययी और कंजूस होते थे परन्तु मोसर, बरसी, और क्रिया कर्म पर अधिक खर्च करते थे।

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 149
2 वही, पृ. 149
3 वही, पृ. 150
4 वही, पृ. 154

पुष्करणा ब्राह्मणों के रीति रिवाज

इन ब्राह्मणों के रीति रिवाज बहुत सरल और सादे थे। आपस का व्यवहार भी इन लोगों में बहुत अच्छा था। देने-लेने का भी अधिक रिवाज नहीं था। बेटी का बाप चाहे कुछ न देता तो भी बेटे के घर वाले उसकी तारीफ करते थे।

शादी में जो खर्च होता था उसका बहुत कम भाग दूसरी जात वालों को मिलता था क्योंकि जो देने दिलाने का रिवाज होता था वह अपने ही रिश्तेदारों में दे-ले दिया जाता था। अन्य जातियों की भांति नाई, ब्राह्मणों को नहीं दिया जाता था।[1]

इन ब्राह्मणों में बेटे वालों से 'रीत' अर्थात् नगद रुपया लेने का भी रिवाज नहीं था। बिरादरी वाले खुशी से हर एक के घर आते जाते थे। अमीर और गरीब का भेद भाव नहीं था। ब्याह, जनेऊ आदि के कार्य अनेक बार एक ही दिन और एक ही मुहूर्त पर सारी बिरादरी वालों के एक साथ होते थे।

1 जनेऊ—पुष्करणा ब्राह्मणों में जनेऊ सात और चौदह साल की आयु में होता था। जनेऊ की रस्मों में निम्न कुछ मुख्य रस्में थीं[2] जैसे—

2 हाथ कान लेना—यह जनेऊ से आठ-दस दिन पहिले होता था जिसमें उस लड़के को जिसका कि जनेऊ होता था, वर बनाया जाता था।

3 विनायक—जनेऊ से पांच या सात दिन पहिले विनायक होता था। उस दिन वर को स्नान करवाते समय चार औरतें उसके सिर पर दही और मेट (मुलतानी मिट्टी) मिलाकर डालती थीं, जिसे अटाल कहते थे। फिर नायन लड़के को नहलाकर ऊनी कपड़ा उढ़ा देती थी। फिर घर का बड़ा व्यक्ति उसे आकर उठाता था। घी और गुड़ लड़के के नाना के घर भी भेज दिया जाता था जिससे उनको ज्ञात हो जाये कि उन्हें दस्तूर भेजना है। इसके पश्चात् भाई बन्दों और नाना के घर वालों को भोजन करवाया जाता था। शाम को नाना के घर से औरतें पान, फूल, घेवर, लड्डू लेकर गीत गाती हुई जाती थीं तथा लड़के के टीका करके सब सामान उसे दे देती थीं।

4 छिक्की—जनेऊ की पहली रात छिक्की होती थी। अन्य जातियों में विवाह के समय बरात निकलती थी वैसे ही पुष्करणाओं में यह छिक्की होती थी। जनेऊ के दिन लड़के का सिर मुण्डाते थे। यदि विवाह और जनेऊ साथ होता तो बाल साथ नहीं कटवाये जाते थे। लड़के को तैयार करके वर

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 162
2 वही, पृ. 164

बनाते थे। इनके यहां इस अवसर पर सिरमाली हवन करता था। इस कार्य के लिये उसे दक्षिणा दी जाती थी। हवन समाप्त होने के पश्चात् लड़का उठकर घर वालों से भीख मांगता था। बाहर जाने के लिए तैयार होता था। सिरमाली पूछता कि कहां जा रहा है तब कहता कि काशी पढ़ने को जाऊंगा। परन्तु सिरमाली ब्राह्मण और घर वाले उसे रोक लेते थे। शाम के समय लड़का अपने नाना के घर 'देराली' पूजने के लिये जाता था। नाना, मामा भी अपनी स्थिति के अनुसार लड़के के घर वालों को कुछ नेग देते थे। जनेऊ होने के पश्चात् भी 11 दिन तक लड़के को मांगा हुआ खाना खिलाया जाता था।[1]

5 **सगाई**—सगाई वर और वधू के घर की औरतें ही तय कर लेती थीं और घर के मर्द उसे स्वीकार कर लेते थे। सगाई को छोड़ना बुरा नहीं समझा जाता था। सगाई की रीत के रुपये भी नहीं लिये जाते थे और अधिक खर्च भी नहीं होता था। वधू की मां वर के घर से चार औरतों को बुलाकर उनकी गोद चार-चार नारियल से भर देती थी। बस केवल इतने से ही सगाई स्वीकार कर ली जाती थी।

6 **व्याह देना**—विवाह से 15-20 दिन पहिले वधू के घर की औरतें वर के यहां कहला भेजती थीं कि 'हम व्याह देने आ रही हैं, तुम अपना आंगन अबोट (पक्का) कर रखो।[2] फिर दूसरे दिन या उसी दिन वधू के घर से औरतें वर के घर जाती थीं और वर को चौकी पर बैठाकर टीका करतीं और फूलों के हार पहिना कर, पास बैठाकर खिलाती थीं तथा उसकी एक गोद नारियल से भर देती थीं। इस रस्म को 'ब्याह देना' कहा जाता था।

7 **हाथकाम लेना**—ब्याह देने के पश्चात् हाथकाम लेने का रिवाज वर और वधू के घर होता था। यह रिवाज व जनेऊ लेने के समय जैसा किया जाता था इसी प्रकार विवाह के समय भी होता था।

8 **बनावा**—यह दस्तूर वर और कन्या के नाना के घर होता था जिसमें नाना के घर की औरतें वर अथवा कन्या को तिलक करके रुपये, नारियल आदि देती थीं और खाना खिलाया जाता था।

9 **विनायक**—विवाह से पांच या सात दिन पहिले विनायक का मुहूर्त होता था जिसमें वर को तैयार करके गणेशजी की पूजा की जाती थी और लापसी बनाकर भाई-बन्दों को भोजन कराया जाता था।

10 **पैसारा**—फेरों से एक दिन पहिले पैसारा होता था। इस दिन वधू के नाना और दादा के घर वाले मिलकर वर के घर जाते थे। दोनों तरफ से

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 166
2 वही, पृ. 166

आदमी मिलकर 100 से 200 तक हो जाते थे और वे सब मिलकर सपरदान करते थे।[1]

11 **सपरदान**—सपरदान के दस्तूर में वर को चौकी पर बैठा दिया जाता था। वधू के घर का कोई बड़ा आदमी और औरत मिलकर वर के पैर धोते थे। इस समय दोनों तरफ के आदमी अपना गोत्र बोलते थे। सिरमाली ब्राह्मण मंत्र पढ़ता था।

12 **मिलनी**—फिर वर साफा बांधकर और तैयार होकर बाहर आता था और वर के घर वालों से कन्या के घर वाले गले लगकर मिलते थे। साथ ही एक-एक रुपया भी वर के रिश्तेदारों को देते जाते थे। अधिक से अधिक मिलनी की रकम 300 रुपये तक होती थी और यदि कोई खर्च करना चाहता तो 100 रुपये तक ही व्यय करता था।[2] वर का पिता अपने जान पहिचान वालों को भी रुपया दिलवाता था।

सगपण होने के पश्चात् जब तक मिलनी नहीं होती थी वर और वधू के घर वाले एक दूसरे से बोलते नहीं थे। परन्तु मिलनी हमेशा बेटी वाले ही देते थे तथा बेटे वाले लेते थे।

13 **कंवारी जान**—कंवारी जान जीमने के लिए वर का पिता अपने रिश्तेदारों को बैठाकर रखता था क्योंकि पहिले मिलनी होती थी, इसके पश्चात् खाना खाने के लिये वर के घर वाले वधू के घर जाते थे और दरवाजे के बाहर ही खड़े होकर कहते थे कि 'हमको भीतर लो' परन्तु कन्या के घर वाले कहते थे कि 'अभी तो आपके साथ थोड़े आदमी हैं, और लाओ'[3] इस तरह से काफी समय बाहर खड़े-खड़े हो जाता था।

14 **हींग बघार**—तब हींग बघार देकर लोगों को अन्दर किया जाता था। हींग बघार का यह दस्तूर था कि वधू के घर का कोई बड़ा व्यक्ति एक चमचे में हींग और घी आग पर रखकर दरवाजे पर खड़ा हो जाता था। यह हींग बघार अन्दर आने की एक तरह से अनुमति होती थी। फिर बरातियों को कोरपाण अर्थात् बिना धोये कपड़े पर बैठाकर लापसी, चावल और बूरा और दूध खिलाते थे। वर के नाना और दादा को थालभर कर देते थे जिन्हें वे अपने साथ ले जाते थे। इस थाली को आहार थाल व देवताओं का कांसा कहा जाता था।

15 **छिक्की**—कंवारी जान के दूसरे दिन छिक्की होती थी। दोपहर के बाद वधू घोड़ी पर सवार होकर वर के घर आती थी। उसके साथ उसके

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 168

2 वही पृ. 169

3 अधिक विस्तारपूर्ण विवरण के लिये मर्दुमशुमारी, पृ. 170

घर की स्त्रियां और पुरुष सब होते थे। वधू की दरवाजे पर सुहागण औरत आरती करती थी और 1 रुपया तथा नारियल से उसकी गोद भरती थी। वधू घोड़ी से नहीं उतरती थी, इसके पश्चात् वधू को वेलनों और चांदी की सांकल से नापा जाता था जिसे 'पोखना' कहते थे। वधू के साथ दो तोरण होते थे, एक तो उसी समय वधू के घर पर बांध दिया जाता था और दूसरा वर अपने साथ वधू के घर जब आता था तब लाता था। उसके पश्चात् इसी प्रकार वर की छिक्की निकाली जाती थी और वर उसी प्रकार शहर में घूमकर वधू के घर आता था। वर को भी वधू के घर की औरतें वेलन और जंजीर से नापती थीं। इस समय वर से कुछ मंत्र भी बुलवाये जाते थे जिससे पता चल जाता था कि वर गूंगा तो नहीं है।[1] इसके पश्चात् कुछ ले-देकर वर को रवाना करते थे।

16 **खिरोडा और ब्याह वास्ते जाना**—छिक्की के आने के पश्चात् वर को दरवाजे पर बैठा देते थे और सब लोग खिरोड का रास्ता देखते थे जिसको वधू के घर वाले गाते बजाते जाते थे। खिरोडे में अनेक चीजें होती थीं जैसे दो बडे-बडे पापड़ जिनको बन-पापड़ कहते थे। जिनके ऊपर कुमकुम से गालियां लिखी होतीं थीं। 11 मामूली पापड़, 11 मूंग मोठ की बड़ियां, 11 सेर सांगरियां, केर कूमट, सूखी गंवार फली, रोकड़ 50) रु. और साहा अर्थात् व्याह का समय लिखा रहता था।[2] फिर उसी प्रकार सपरदान (जैसा कि जनेऊ के समय होता था, करते थे) और सारा सामान वर के घर वालों को दे देते थे। वधू पक्ष वाले इन पर रंग डालते थे। वापिस अपने घर चंवरी बांधते थे (फेरों का स्थान तैयार करते थे)। वर पक्ष की औरतें वर को तैयार करती थी और फिर उसे पैदल दौड़ाते हुए लड़की वालों के घर ले जाते थे। ढोल या बाजा इत्यादि कुछ भी नहीं होता था। औरतें पीछे गीत गाती हुई जाती थीं और बाकी बाराती घर पर ही बैठे रहते थे। जब वर अपने ससुराल के दरवाजे पर पहुंचता तब सास उसके माथे पर दही और सरसों लगाती थी इसको 'दही देना' कहते थे और अपने ओढने का पल्ला उसके गले में फंदे के रूप में डालकर और उसकी नाक पकड़कर अंदर ले जाती थीं।[3] दही देने का दस्तूर राजपूतों की तरह से ही इनकी जात में भी था। जब कोई जँवाई अपने ससुराल वालों से बदल जाता तो उसकी सास कहती कि 'तूने भला मेरा दही लजाया'। इस प्रकार दही लजाना एक ताना था। वधू के घर वाले रंगरस (मेंहदी और नागरबेल के पान) को तैयार करते थे

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 171
2 वही, पृ. 172
3 वही, पृ. 172

जाते थे। खाना खाने से पहिले वधू के घर वाले वर के नाना, दादा और बड़े रिश्तेदारों को कलसों में पानी भर के स्नान कराते थे, फिर नई जनेऊ पहिनाकर भोजन करवाते थे। इसका अर्थ यह था कि अब वर के घर वाले फिर ब्राह्मण हो गये क्योंकि इतने दिन कोरपाण कपड़ों पर जीमने और दूध तथा गुड़ का खाना खाने के कारण ब्राह्मण नहीं रहे थे। यदि कोई कलसा जान न करता तो अपने ही घर मे नहाकर नई जनेऊ पहिन लेते थे।[1]

21 **मरने की रस्में**—मरने की रस्मों में आम रिवाज से इतना फर्क था कि[2]—

1 मुर्दे को दौड़ते हुए ले जाते थे। क्योंकि महाराजा अजीत के समय में दरवाजे के मुसलमान पहरेदार तलाशी के बहाने मुर्दे को छू लेते थे। इसलिये मुर्दे को उठाने वाले दौड़ा करते थे। वही रस्म अब तक भी चली आ रही थी।

2 मुर्दे को ले जाते समय राम राम सत नहीं बोलते थे बल्कि मरने वाले का नाम ले लेकर रोते थे।

3 मुर्दे को बैकुंठी में बैठाकर निकालने की रीत पुष्करणों में नहीं थी।

4 औरतें घर और मसाणों के बीच तक, जिसको बिचला बासा कहते थे और जहां मृतक को उतारते थे, रोती हुई जाती थीं, फिर नहाकर घर आती थीं।

5 पुष्करणों में भद्दर होने का रिवाज सब कौमों से अधिक था। दस बीस और इससे भी अधिक पीठी वालों के लिए भद्दर होते थे। यही कारण था कि यह लोग बहुत दिनों तक भद्दर रहते थे।

22 **रस और औसर-मौसर**—पुष्करणाओं में मृतक के पीछे खर्च भी बहुत पड़ता था और इसके लिये कई प्रकार के रिवाज थे जैसे 'रस' का रिवाज। इसके अनुसार 12 दिन भाई-बंदों और बहिन-भानजियों को खाना खिलाया जाता था। इसमें घी बहुत लगता था क्योंकि जिस घर में जितने आदमी होते थे उतनी ही पली (चम्मच) घी की उनकी औरतें रोटी खाने से पहिले ले जाती थीं।[3] 12 वें दिन बारहवां होता था। इस दिन यदि हैसियत हो तो कुल खांप को खाना खिलाते थे जिसको 'थांभा' कहते थे, नहीं तो अपने कुटुम्बियों को खिला देते थे, इनको 'भाइया' कहते थे। मुहल्ला भी करते थे अर्थात् उस मुहल्ले में जितने भी पुष्करणा ब्राह्मण होते थे उनको

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 176
2 वही, पृ. 178-80
3 वही, पृ. 180

जाता था। नाई, ब्राह्मण इत्यादि के नेग पंचोलियों में पहिले से ही तय होते थे जो पुरानी वहियों में लिखे रहते थे। जिनके अनुसार हर आदमी चाहे वह गरीब हो या अमीर, खर्च करता था। लेने वाले भी कोई झगड़ा नहीं करते थे।

जब बालक पैदा होने का समय आता तब इनके यहां एक आदमी कुछ मूंग के दाने हाथ में दाई के यहां ले जाता था। वह रास्ते में भी कुछ नहीं बोलता था और न ही कुछ दाई से बोलता, उसके हाथ मे मूंग के दाने रख देता था। दाई भी समझ जाती और उसके साथ हो जाती।[1] लड़का होने पर कांसी की थाली और लड़की होने पर छाज बजाया जाता था। कायस्थों की औरतें पानी भरने व अन्य कामों के लिये घर से नहीं निकलती थीं। परन्तु देव दर्शन के लिये और बिरादरी में मिलने के लिये दुपट्टे के ऊपर दुशाला ओढ़ कर घर से बाहर जाती थीं।

मुर्दे को दाग देते थे। बैकुंठी में बैठाकर निकालने का दस्तूर इनके यहां नहीं था। बेटा भद्दर होकर 12 दिन की क्रिया का काम करता था। तीसरे दिन मृतक के अवशेष गंगाजी को भेजने के लिये चुन लिये जाते थे। सब कुटुम्ब वाले 12 दिन तक लापसी, रोटी, आंवले और चने का साग जीमते थे। इसको रस कहा जाता था और रात को नहीं सोते थे। 12 वें दिन ब्राह्मण भोजन करवा कर न्यात को जिमाते थे। 15 वें दिन एक ब्राह्मण को जिमाया जाता था जिसे 'पक्की' कहते थे। साढे पांच महीने पश्चात् छः माही और ग्यारह महीने पीछे बरसी होती थी।

ओसवाल

सगाई गुड़ और नारियल से होती थी। जोधपुर आदि शहरों में लड़कियों का विवाह 14 साल की आयु में कर देते थे। परन्तु गांवों में और विशेषकर गोडवाड़ और जालोर में 20 साल की लड़कियों को भी कंवारी रखा जाता था, जिनको बहुत-सा रुपया लेकर बूढे आदमियो के साथ ब्याह देते थे।[2] विवाह ब्राह्मण करवाता था जो हिन्दुओं की रीति से होता था। विवाह के पश्चात् तीन जीमण खिचड़ी, भात और मिजमानी के नाम से दिये जाते थे। इस जाति में नाता नहीं होता था।

मुर्दे को जलाते थे और फूल गंगाजी ले जाते थे। गाय और गंगा को भी हिन्दुओं के समान मानते थे परन्तु क्रिया और श्राद्ध हिन्दुओं के समान नहीं करते थे। नवें दिन पगड़ी बांध कर सोग उठा देते थे। मोसर और न्यात

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 395
2 वही पृ. 415

करने का दस्तूर भी ओसवालों में था परन्तु अधिक नहीं।

ओसवाल अधिक पढ़े-लिखे नहीं होते थे लेकिन महाजनी धन्धे में बहुत चतुर थे। यह दूसरे महाजनों से अच्छा खाते और अच्छा पहिनते थे। स्त्रियों को भी बड़े सम्मान से रखते थे। ओसवाल छोटी जात जैसे नाई के हाथ की रोटी भी खा लेते थे।[1]

सरावगी

इनके यहां विवाह महाजनों के अनुसार होता था परन्तु इतना अन्तर है कि तोरण ब्याह से एक दिन पहिले मारते थे। रीत के रुपये 84 से ज्यादा नहीं होते थे। नाता भी नहीं होता था।[2]

मुर्दे को नहलाते भी थे और नहीं भी परन्तु जलाते अवश्य थे। परन्तु क्रिया कर्म हिन्दुओं के जैसा नहीं करते थे। भद्दर भी नहीं होते थे। तीसरे दिन पत्थर से पत्थर खटका कर कह देते थे कि 'तुम तुम्हारे हम हमारे', इसका मतलब यह था कि जिन्दों को मुर्दों से कोई वास्ता नहीं। श्राद्ध और छमछरी भी नहीं करते थे और न ही इस बात को मानते थे कि ऐसा करने से मुर्दों को कुछ प्राप्त होता है। 12 वां और मौसर भी नहीं करते थे। सरावगी, शराब, मांस, लहसुन और प्याज नहीं खाते थे, यहां तक कि शहद का भी उपयोग नहीं करते थे क्योंकि उसे भी मदिरा के समान समझते थे। उनको भी अपवित्र समझा जाता था। ऊन का उपयोग तो करते थे परन्तु ओढ़के और मन्दिर में पहिनकर नहीं जाते थे। जीव-हत्या को पाप समझते थे। पानी भी छानकर पीते थे। जीव पड़ जाने के डर से रात को रोटी नहीं खाते थे। लकड़ी और अन्य ईंधन (छाने) धोकर जलाते थे। सरावगी और ओसवालों के व्यवहार और आचार विचार में मतभेद था जैसे[3]—

1 ओसवालों के मंदिरों की सेवा सेवक करता था परन्तु सरावगियों में सरावगी।

2 ओसवाल रात को भोजन कर लेते थे परन्तु सरावगी बिल्कुल नहीं करते थे, यहां तक कि पांच साल से ऊपर आयु के बच्चे को भी खाना नहीं देते थे।

3 ओसवाल श्वेताम्बरी होते थे और सरावगी दिगम्बरी।

4 ओसवाल पर्यूसन आठ दिन के मानते थे और सरावगी 10 दिन के (भादों सुदी पंचमी से 14 तक)।

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 422

2 वही, पृ. 426

3 वही, पृ. 427

5 ओसवाल स्नान किये बिना भी रोटी खा लेते थे परन्तु सरावगी नहीं खाते थे।

6 ठाकुरजी का पूजन ओसवाल तो पांव के अंगूठे से आरम्भ करते थे और सरावगी सिर से अर्थात् वे तो केसर और चंदन पांव के अंगूठे से लगाते हुए सिर तक ले जाते थे और ये सिर से पांव तक लाते थे।

7 ओसवाल केसर, चन्दन और फूल ठाकुजी के चढ़ा हुआ रहने देते थे और सरावगी पूजा के पीछे केसर पोंछ देते थे और फूल भी उतार देते थे।

पोरवाल

पोरवाल बेटियों के विवाह के लिए अधिक रुपया लेते थे, विशेषकर बड़ी आयु की लड़कियां तो उनके लिए दौलत की खान होती थी। जिसको मालदार बड़ी आयु वाले महाजन परदेश से आकर हजारों रुपये देकर व्याह कर लेते थे। इस कारण ये लोग लड़कियों के पैदा होने से जितने खुश होते थे उतना लड़का पैदा होने पर नहीं।[1] इनकी यह कहावत प्रचलित थी जैसे[2]—

'बज्जी थाली उण रे करम री काली,
बजियो सूपड़ो न हुओ झूंपड़ो।'

(जिसके घर थाली बजी अर्थात् लड़का हुआ, उसके तो करम फूट गये और जिसके घर छाजला बजा अर्थात् लड़की हुई, उसका घर बन गया।)

गरीब पोरवाल बेटियों की शादी के वचन पर उधार ले लेकर खाया करते थे और बेटी के जवान होने पर उसका व्याह करके कर्जा चुका देते थे। पोरवाल रुपयों के लालच में बूढे आदमियों को जवान बेटियां व्याह देते थे।

पोरवालों में एक यह भी रिवाज था कि वर जब ससुराल आता तो पहले सास दरवाजा रोक कर बैठ जाती थी और कुछ रुपया बेटी की परवरिश के नाम का लेकर हटती थी। फिर सालियां आती और उनके पीछे दूसरे रिश्ते की औरतें आतीं और वे भी अपने-अपने हिस्से का दस्तूर लेती थी। इसके पश्चात् वर को अपनी पत्नी को भी देना पड़ता था।

पोरवाल भी ओसवालों की तरह मुर्दों का अधिक सोग नहीं रखते थे। 'तीया' भी नहीं करते थे। मुर्दों को बैकुंठी मे भी नही बैठाते थे।[3]

अग्रवाल

इनके यहां विवाह अपना और मां का गोत्र टाल कर होता था। वधू

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 428
2 वही, पृ. 429
3 वही, पृ. 429

को फेरों के समय सफेद वस्त्र पहनाते थे। गहना हो या न हो परन्तु चांदी की सात पातड़ी गले में जरूर पहनाते थे, इसके बिना फेरे नहीं हो सकते थे। नाते का रिवाज नहीं था। सगपण होने के पश्चात् वर और वधू के माता-पिता एक दूसरे के साथ खाना नहीं खाते।[1] यह रिवाज इन्हीं में था, दूसरे महाजनों में नहीं।

पहला बच्चा पैदा होने पर परोजन होता था। उसका यह दस्तूर था कि अच्छा मुहूर्त देखकर पुरोहित मर्द और औरत का गठजोड़ा बांधता था। कुलदेवी की मूर्ति लकड़ी पर खुदी हुई उनके समक्ष रखकर विवाह के मंत्र पढ़ता था। फिर दोनों तीन बार उस मूर्ति के चारों तरफ घूमते थे। बच्चे को उस समय पास नहीं रखते थे बल्कि दूसरे घर भेज देते थे। फिर ब्राह्मणों को जिमाकर बिरादरी को जिमाते थे। परोजन की रस्म पूरी होने के पश्चात् बच्चे का कान छेदते थे।

गमी की रस्मों में कुछ विशेषता नहीं थी। यह लोग शराब और मांस बिलकुल नहीं छूते थे और कुछ लोग तो प्याज और लहसुन का भी परहेज रखते थे।

तुरकिय बोहरे

इनके विवाह मुसलमानों की भांति ही होते थे। निकाह मुल्ला पढ़ता था। औरतों में ज्यादा पर्दा नहीं होता था। मुर्दे को नहलाते थे। कफन के लिए कोरा कपड़ा लाकर धोते थे और मुर्दे को करवट लिया हुआ गाड़ते थे।[2] तीसरे दिन बकरी का मांस उबालकर उसमें उबले हुए मूंग और चावल मिलाकर खाते थे।

भंगी

शादी व गमी में फेरे और क्रिया कर्म इनका गुरु करवाता था। फेरे सात, चंवरी में लिये जाते थे। विधवा औरत का नाता भी होता था। उसकी रीत के रुपये ससुराल वाले लेते थे। यदि कोई भंगी गैर कौम की औरत से शादी कर लेता था तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाता था। परन्तु माफी मांगने पर फिर से जात में आ सकता था।[3] भंगी कई विवाह करते थे परन्तु दो बहिनों को एक साथ घर में नहीं रख सकते थे। एक के मरने के बाद दूसरी से विवाह हो सकता था। सगपण और नाता अपने नाना की ओर

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 433

2 वही, पृ. 442

3 वही, पृ. 583

हूंफा की मांग में नहीं होता था और विधवा अपनी ससुराल में नाते नहीं जाती थी।

ये लोग पाखाना उठाने के अतिरिक्त झाडू भी बनाकर बेचते थे। हिन्दू और मुसलमानों की जूठन ले आते थे।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने विभिन्न जातियों के मुख्यतः जन्म, विवाह और मृत्यु सम्बन्धी रीति-रिवाजों का संक्षिप्त विवरण किया है। विभिन्न जातियों के अपने रीति-रिवाज होते थे और वे उनकी पालना में बड़े कट्टर थे।

विभिन्न जातियों के रीति-रिवाजों की विभिन्न विशेषताएं थी जो आपस में जातियों का विभेद करती थी जैसे राजपूत दाढ़ी रखते थे (फौज में जो भर्ती होते थे वे दाढ़ी नहीं रखते)। दाढ़ी और दाढ़ी छुआने पर बहुत खुशी मनाई जाती थी लेकिन इस प्रकार का रिवाज अन्य किसी जाति में नहीं था। उच्च कुल के राजपूतों में तथा स्त्रियों में पर्दा भी बहुत होता था परन्तु गरीब और किसान राजपूतों में इतना विशेष रिवाज नहीं था। ससुराल में स्त्री का नाम भी राजपूतों में नहीं लिया जाता था, केवल उसकी जाति का नाम लेते थे जैसे भटियाणीजी, राठौड़जी आदि परन्तु अन्य किसी जाति में ऐसी प्रथा नहीं थी। ससुराल में राजपूत केवल अपना गोत्र टालते थे। नाना और जंवाई एक गोत्र के हो सकते थे परन्तु ब्राह्मणों और अन्य जातियों में मां, बाप, नानी आदि का भी गोत्र टाला जाता था। राजपूतों में अफीम बहुत आवश्यक वस्तु समझी जाती थी जबकि अन्य जातियों ब्राह्मण, वैश्य आदि में नहीं। जन्म, विवाह और यहां तक मृत्यु पर भी अफीम का उपयोग होता था। राजपूतों में सगाई की एक विशेषता यह थी कि एक बार सगाई होने के पश्चात् वह छूटती नहीं थी और कहा जाता था कि 'परणी छूटे मांग नहीं छूटे' अर्थात् विवाहित छूट सकती है परन्तु मांग यानी सगाई की हुई नहीं छूट सकती। इस प्रकार की प्रथा ब्राह्मण, वैश्य आदि जातियों में नहीं थी। विवाह के रीति रिवाज प्रायः अन्य जातियों के समान ही थे परन्तु राजपूतों में सास दामाद से पर्दा करती थी और उनके सामने नहीं आती थी। कोरवाण अर्थात् बिना धोये कपड़े पहनाकर फेरे करने का दस्तूर राजपूतों में नहीं था जबकि ब्राह्मण और वैश्यों में लड़की को कोरवाण वस्त्र पहिनाकर विवाह वेदी पर बैठाते थे। गमी की रस्में भी वैसी ही थीं जो अन्य जातियों में होती हैं जैसे बैकुंठी निकालना, मोसर करना, बखेर करना, फूल चुनना, तीया आदि।

जाटों में केवल एक खोपरा और गुड़ के टुकड़े से सगाई पक्की हो जाती थी जिसे बेटी वाला लेता था और बेटे वाला देता था। जबकि अन्य जातियों में जैसे ब्राह्मणों, राजपूतों और वैश्यों में लड़की वाला रस्म की वस्तुएं लड़के

पिरोयत या पुरोहित के रीति-रिवाज राजपूतों से अधिक मिलते थे जबकि ये ब्राह्मण थे।

दादूपंथी की संतान विवाह करती थी और बेटे वारिस होते थे। गुरु जो विवाह नहीं करता था उसका वारिस बड़े चेले को बनाया जाता था। अन्य जातियों के समान 'खोला' (गोद) लेने की भी प्रथा इनमें थी।

चारणों के बहुत से रिवाज राजपूतों से मिलते थे परन्तु इनमें यह एक विशेषता थी कि सगाई होने पर लड़की वाला तो नहीं छुड़ा सकता था परन्तु लड़के वाला यदि चाहता तो छोड़ सकता था। नाता भी इनके यहां होता था। भद्दर होने का भी दस्तूर नहीं था। यदि कोई मोसर करता तो भद्दर होता वरना नहीं।

ढोली हिन्दुओं के रिवाज भी अधिकतर राजपूतों से मिलते थे परन्तु इनमें विधवा स्त्री का नाता नहीं होता था जबकि राजपूतों में होता था। इनमें भी जाटों के समान बेटे का बाप बेटी के बाप को रुपये देता था।

कायस्थों में सगाई जाटों के समान नारियल और गुड़ से पक्की होती थी। इनमें भी अन्य छोटी जातियों के समान (नाई, धोबी, ढोली) ब्याह की रीत के रुपये लगते थे जो वर का पिता वधू के पिता को देता था। कायस्थों की औरतें पानी भरने या अन्य कार्यों के लिये बाहर नहीं जाती थीं। गमी के रीति-रिवाज अन्य जातियों के समान थे।

ओसवाल और पोरवाल अपनी पुत्रियों का विवाह रुपये लेकर करते थे। विवाह के दूसरे रिवाज अन्य जातियों के समान थे। मुर्दों का अधिक सोग भी नहीं रखते थे। श्राद्ध, तीया तथा मोसर भी नहीं करते थे।

सरावगी विवाह के रीति-रिवाज सामान्य थे परन्तु तोरण विवाह के एक दिन पहिले मारा जाता था जबकि राजपूतों और ब्राह्मणों में उसी दिन मारा जाता था। इनके नाता नहीं होता था। मुर्दे का अधिक सोग नहीं रखते थे बल्कि अन्य कोई क्रियाकर्म भी नहीं करते थे और कहते थे कि 'तुम तुम्हारे और हम हमारे' अर्थात् जिन्दों का मृतकों से कोई वास्ता नहीं।

अध्याय 5

सामाजिक जीवन

परिचय

पिछले दो अध्यायों में हमने मारवाड़ की जातियों एवं उनके रीति रिवाजों (संस्कार) का वर्णन किया है। समाज के संगठन व स्थिति की जानकारी के लिए जातियों का वर्गीकरण और उनके मुख्य रीति रिवाज जानना आवश्यक होता है जिनका विवरण सुविधा हेतु और अध्यायों के पृष्ठों की सीमा को ध्यान में रखते हुए हमने उनको अलग-अलग लिख दिया है यद्यपि यह स्पष्ट है कि वे इस अध्याय के अभिन्न अंग हैं।

इस अध्याय में हमने वेश-भूषा, आभूषण, भोजन, मकान, शिक्षा, भाषा, मनोरंजन, पर्व एवं मेले का विवरण दिया है, जिससे हमें अभयसिंह के समय के सामाजिक जीवन की जानकारी मिल सके।

संयुक्त परिवार प्रथा

इस काल में भूमि व्यवस्था में भूस्वामित्व व्यक्तिगत भी था और सामूहिक भी। प्रत्येक परिवार की अपनी भूमि होती थी और परिवार के विभाजित होने पर परम्परागत उत्तराधिकार के अनुसार, भूमि का बंटवारा भी होता था।[1] किन्तु चूंकि इस काल में भूमि ही जीवन निर्वाह का प्रधान साधन थी, भूमि विभाजन की प्रवृत्ति भी अपेक्षाकृत कम थी अतः अधिकतर परिवार संयुक्त ही होते थे।

वेशभूषा

इस समय मारवाड़ी वेशभूषा सभी जातियों में समान थी यद्यपि यह स्थिति के अनुसार बहुमूल्य अथवा साधारण होती थी। महाराजा एवं उच्च कुल के लोग बड़े भड़कीले वस्त्र पहनते थे। सिर पर सोने एवं चांदी से बने हुए कपड़े की पगड़ी का उपयोग करते थे।

---

1 हवाला बही, वि. सं. 1834-1844

मारवाड़ी वेशभूषा यहां की प्रकृति की अनुरूपता पर आधारित थी। पुरुषों की सामान्य वेशभूषा धोती, अंगरखी और पोतिया (पगड़ी) थी। स्त्रियां साधारणतः घाघरा, कांचली और ओढणी का प्रयोग करती थीं।

परन्तु समाज के वर्गों में विभाजित होने के कारण यहां इसी आधार पर ये वेशभूषायें भी विभाजित हो गईं।

कुलीनवर्गीय पुरुषों की वेशभूषा—मारवाड़ की कुलीनवर्गीय वेशभूषा शाही प्रभाव से वंचित न थी। इसी आधार पर नरेश एवं सरदार, चूड़ीदार पजामा एवं शेरवानी पहनने लगे थे तथा दुपट्टे पर से ही पजामे पर कमरबन्द लगाते थे। सर पर खड़किया पाग बांधते थे। कुलीन वर्ग के लोग अपने साफों को जरी से सुशोभित करते थे। पगड़ियों पर स्वर्ण कलंगी लगाने का भी प्रचलन था। विशेष अवसरों पर नरेश अपने हाथों से कलंगी लगाकर सरदारों को सम्मानित करते थे।

बहुमूल्य वेषों का प्रयोग शाही पुरस्कार के रूप में भी होता था। महाराजा अभयसिंह को बादशाह मोहम्मदशाह ने अनेकों अवसरों पर बहुमूल्य वस्त्र भेंट किये थे। उच्च कुलीन वर्ग रेशमी वस्त्रों का उपयोग करते थे। घर में धोती, अंगरखा और दुप्पट्टे का प्रचलन था। दुप्पटे को गले में भी डालने का प्रचलन था।

2 **कुलीन वर्गीय स्त्रियोंकी वेशभूषा**—कुलीन घरों की स्त्रियां घाघरे, ओढनी एवं कांचली, जो कि जरी एवं रत्नयुक्त होती थी, प्रयोग करती थीं। महलों में भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने में चानणीं (एक प्रकार का पर्दा जो कपड़े द्वारा निर्मित होता था एवं सेविकाओं द्वारा आवर्न्ति किया जाता था) का प्रयोग होता था। मारवाड़ के इस पर्दे का उत्तरदायी मुगल प्रभाव ही था। उच्च वर्ग की स्त्रियां मोती, नग, सोने चांदी के बेल बूटे, सितारों का उपयोग कपड़ों पर करती थी।[1]

3 **जनसाधारण की वेशभूषा**—पुरुषों की वेशभूषा मारवाड़ की साधारण जनता किसानों द्वारा निर्मित थी। पुरुष एक धोती का प्रयोग करते थे जो उनके घुटनों तक होती थी।[2] ऊपरी भाग को आवरित करने के लिये छोटी अंगरखियों का प्रयोग करते थे। जल के अभाव के कारण यहां वस्त्र धोने व स्नान आदि का अधिक प्रचलन नहीं था। इसी कारण निर्धन लोग अपनी वेषभूषाओं के नष्ट होने तक उन्हें अपने शरीर पर ही रहने

---

1 व्याह वही नं. अफ. अफ. 127, 129, 133 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840

2 आइने अकवरी, भाग 3, पृ. 174, अब्दुलफजल।

अपेक्षाकृत अधिक भारी होते थे। अमीर घरों की स्त्रियां सोने के आभूषण जिनमें हीरे जवाहरात जड़े जाते थे, पहिनती थीं।[1]

भोजन : उच्चवर्गीय

तरह तरह के अन्न से बनाये गये भांति 2 के पकवान, अनेक प्रकार के साग, भिन्न-भिन्न प्रकार से तैयार किये हुए मांस का प्रयोग महाराजा एवं उच्चकुल के लोगों के भोजन में होता था। सूरज प्रकाश में इनके भोजन में चौरासी प्रकार के भोग (जगन्नाथ भोग, केसरिया भोग) आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के मांस, पुलाव, बिरणज, दुप्याजा बिरियां आदि अनेक प्रकार के मेवे और मिष्ठान्न; अदरख, जमीकन्द, रतालू की सब्जी; आम, नीबू, केरी एवं अंगूर का अचार; श्रीखंड, मावे की खीर आदि का उल्लेख है।[2] भोजन सोने के थालों में किया जाता था। भोजन के पश्चात् पान का उपयोग किया जाता था। महफिलों में सोने के पात्रों में शराब पिलाई जाती थी। महफिलों में अमीर-उमराव एवं चारण भी राजा की आज्ञा से शराब व अफीम का सेवन करते थे। शराब भी अनेक प्रकार की होती थी यथा-अनार की, दालचीनी की, परतवाली (पुर्तगाली), अंगूर की, गन्ने गुलाब की।[3]

मदिरा का आदान-प्रदान यहां के शिष्टाचार का विशिष्ट प्रतीक था। विवाहों, उत्सवों में यह एक आवश्यक अतिथि सत्कार का माध्यम भी था। अतिथि सत्कार का अन्य माध्यम अमल था। यहां की जनश्रुतियों के आधार पर अमल प्रस्तुत करने पर सदियों से चली आ रही शत्रुता भी समाप्त हो जाती थी। सभी विशेष अवसरों पर जिनमें मृत्यु भी सम्मिलित थी अमल का उपयोग किया जाता था। हुक्के और बीड़ी, तम्बाकू का प्रचलन भी मारवाड़ के अतिथि सत्कार का एक अंग था। पान का प्रचलन मारवाड़ में अधिक नहीं था।

1 **सामान्य भोजन**—विभिन्न सामाजिक स्तर होने से सामाजिक आदतों में भी विभिन्नता पाई जाती थी। मारवाड़ के निवासियों का सामान्य भोजन ज्वार और बाजरा तथा साथ में मोठ था। मुख्य रूप से भोजन में बाजरा था। निर्धन व्यक्ति इसी का सेवन करते थे जबकि धनवान व्यक्ति गेहूं का उपयोग करते थे। चावल और मांस सामान्य भोजन नहीं था केवल राजपूत और कुछ हिन्दू ही, जो इसका खर्च सहन करते थे, वे ही इसे उपयोग में लाते थे।

---

1 ब्याह बही नं. एफ. एफ. 129, 133

2 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 219

3 वही, पृ. 216

मुख्य तरकारी प्याज की थी यद्यपि मारवाड़ के निम्न वर्ग के व्यक्ति खेजड़े के बीज और पत्ते उपयोग में लाते थे और उनका विशेष मसाला मिर्च होता था। कमी के समय में अधिकांश व्यक्ति घास और बीज का भी उपयोग करते थे। मतीरे का उपयोग भी अधिक होता था। उसके बीज को सुखाकर और आटे के साथ मिलाके रख लिया जाता था। तम्बाकू और अफीम सामान्य वर्ग के लोग उपयोग में लाते थे जबकि शराब का सेवन उच्च वर्ग के लोग करते थे। ताजा दूध के लिये लोग मवेशी पालते थे।[1]

अमीर और गरीब के भोजन में बहुत अन्तर था। सामान्य व्यक्ति घाट, खीच, राब, दलिया, खेजड़ा, फोग का सेवन करते थे। शादी विवाह या किसी धार्मिक अवसर पर लापसी बनाते थे जो गुड़, घी और गेहूँ से तैयार की जाती थी। उच्च वर्ग के लोग सब्जी का शोरबा जिसमें खुशबू और मेवा डली हुई होती थी सेवन करते थे। इसके अतिरिक्त खाने में घेवर, खाजा तथा चावल और गेहूँ की बनी वस्तुओं का सेवन करते थे। सब्जी दाल, अचार, मुरब्बा, पापड़ इत्यादि भी उनका मुख्य भोजन था।[2] विवाह के अवसर पर या अन्य उत्सवों पर अनेक व्यक्तियों को आमन्त्रित करते थे, और लड्डू, जलेबी, पूरी खिलाते थे।

मकान

मकान तीन श्रेणी के थे—पहला हवेलियां जिनमें उच्च वर्ग के लोग रहते थे। दूसरा 'ढूंढा' या मिट्टी के मकान जिनमें मध्यम श्रेणी और गरीब लोग रहते थे। तीसरा झूम्पी जो फोग और बांस की बनी होती थी। ये अधिकतर गांवों में होती थीं। मकानों के चारों ओर कांटों का घेरा रहता था। गांवों के अधिकतर लोग झोंपड़ियों में रहते थे जिनके मिट्टी की दीवारें और मिट्टी की छतें होती थीं।

शिक्षा

महाराजा अभयसिंह के समय में शिक्षा का बहुत कम प्रचलन था। राज्य की ओर से दीक्षित शालाओं की भी व्यवस्था बहुत कम थी परन्तु फिर भी प्रवासी व्यक्तियों द्वारा कहीं-कहीं स्थानीय पाठशालाओं (पोसालों) में लोग शिक्षा पाया करते थे। यद्यपि इस समय में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति जारी रही, जिसका ध्येय ज्ञान, व्यक्तिगत कल्याण और जीविका

---

1 पेपर नं. 7, मारवाड़ के बाबत अक्टूबर 14, 1830 नं. 3-8 फ. अस.
2 हकीकत बही, जोधपुर वि. सं. 1856 से 1860 नं. 9 अफ. 60

निर्वाह के साधन उपलब्ध कराना था।[1] शिक्षकों को अपने ही ढंग से शिक्षा देने की स्वतंत्रता थी। अध्यापक साधारणतः गांव के पंडित होते थे जो कि बालकों को मारवाड़ी एवं हिसाब सिखाया करते थे। समाज में शिक्षा का अभाव अनुभव नहीं किया जाता था और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में कोई बाधा नहीं थी। किन्तु ब्राह्मणों की दृष्टि में शिक्षा का प्रयोजन पंचांग देखने, भागवत कथा करने तथा कर्मकाण्डों एवं संस्कारों को सम्पादित करने योग्य ज्ञान प्राप्त करने तक सीमित रह गया था।[2] वैश्य लोग अक्षर ज्ञान अर्जित करके चिट्ठी पत्री लिखने पढ़ने और साधारण गणित तथा व्याज वट्टे का हिसाब लगाना ही पर्याप्त समझते थे।[3] राजपूत तथा अन्य जातियों में शिक्षा का प्रसार अपेक्षाकृत कम था। निम्न जातियों में नहीं के समान था।

इस समय में दो प्रकार की शिक्षण संस्थाएं थीं—एक वे जिनका संचालन कुछ व्यक्ति विशेष अपने पुत्रों की शिक्षा के लिये करते थे। परन्तु अन्य छात्र भी शिक्षक को शुल्क देकर उन शिक्षण संस्थाओं का लाभ उठा सकते थे।[4] दूसरी वे शिक्षण संस्थायें थीं जिनका संचालन स्वयं शिक्षक लोग करते थे और छात्रों से मिलने वाले शुल्क से अपना निर्वाह करते थे। कुछ ऐसे शिक्षक भी होते थे जो शिक्षा को पवित्र दायित्व समझकर शिक्षा देने का काम करते थे और स्कूल का व्यय अपने निजी साधनों अथवा दान में मिलने वाले धन से चलाते थे। इसके अतिरिक्त शिक्षकों और पंडितों को गांव वालों व राज्य की तरफ से भी आर्थिक सहायता एवं भूमि अनुदान होता रहता था।

1 प्रारंभिक शालाएं—हिन्दुओं की आरम्भिक शालाओं को चटशाला, पोशाला आदि नामों में पुकारा जाता था। मुसलमानों की आरंभिक शालाओं को 'मकतब' कहा जाता था। जैन उपासरों में भी आरंभिक शिक्षा देने की व्यवस्था थी।[5]

सामान्यतः शाला का अपना भवन नहीं होता था। प्रारम्भिक शालाएं शिक्षक के घर, दुकान अथवा खुले बरामदे में लगती थीं।

जैन यतियों द्वारा संचालन शालाएं वर्ष में सामान्यतः कुछ ही महीनों के लिये खुली रहती थीं क्योंकि अधिकांश जैन यति भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे। वर्षा ऋतु में ये चतुर्मास मनाते और अधिकांश छात्र अपने

---

1 डा. गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 266
2 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 1330
3 वही, पृ. 1331
4 डा. गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 260
5 वही, पृ. 262

अभिभावकों के काम में हाथ बंटाने के लिए स्कूल छोड़ देते थे।[1] परन्तु ब्राह्मणों द्वारा संचालित स्कूल वर्ष पर्यन्त चलती थी। शिक्षक गांव अथवा नगर का ही निवासी होता था और जब तक उसका निर्वाह चलता था वह स्कूल को बन्द नहीं करता था।

हिन्दुओं की प्रारंभिक स्कूलों के शिक्षक ब्राह्मण जाति के थे। परन्तु अन्य जातियों के शिक्षक भी हो सकते थे। जैन जतियों और महात्माओं के अलावा गुंसाई, छीपों, बनियों और कायस्थों ने भी शिक्षण कार्य को अपनाना प्रारंभ कर दिया था। शिक्षक के लिये किसी प्रकार की शैक्षणिक योग्यता निर्धारित नहीं थी। शिक्षक का मूल्यांकन उसकी विद्वत्ता की अपेक्षा उसकी दक्षता के आधार पर किया जाता था। अधिकांश शिक्षक साधारण शिक्षा प्राप्त थे फिर भी वे पर्याप्त योग्यता के साथ बच्चों को पढ़ाने का काम कर लेते थे। गांवों में शिक्षक का महत्व पटेल तथा पटवारी के समान था और वह गांव के सामूहिक जीवन का विशिष्ट अंग समझा जाता था।[2]

विशेष पर्वों पर शिक्षकों को छात्रों के अभिभावकों से भेंट स्वरूप नगद अथवा अन्य वस्तुएं भी प्राप्त होती थीं। छात्र की शिक्षा समाप्ति के अवसर पर गुरु दक्षिणा के रूप में भी शिक्षक को कुछ उपलब्ध हो जाता था।[3]

बनियों के लड़के बहुत कम समय के लिए पढ़ते थे और बहुधा स्कूल छोड़ देते थे। ब्राह्मणों के लड़के सबसे अधिक अवधि तक स्कूलों में पढ़ा करते थे। पढ़ाई के विषय स्थानीय आवश्यकतानुकूल होते थे। कला-कौशल एवं उद्योग-धन्धों की शिक्षा बच्चे को पैतृक सम्पत्ति स्वरूप घर पर ही प्राप्त होती रहती थी। किसान, कुम्हार, खाती, स्वर्णकार, चर्मकार, बुनकर, वैश्य पुत्र आदि अपने धन्धों का रचनात्मक ज्ञान पिता के घर सहज रूप में ही प्राप्त कर लेते थे। पढ़ने लिखने और साधारण गणित का ज्ञान लगभग सभी छात्रों को समान रूप से दिया जाता था।[4] छपी हुई पुस्तकों का अभाव था। छात्रों को बारखड़ी, पहाड़ा आदि कंठस्थ करवाया जाता था। पढ़ाई का अधिकांश काम मौखिक ढंग से होता था। उन्हें जोर-जोर से उच्चारित भी करना पड़ता था। इस प्रकार सुलेख और सुउच्चारण पर अधिक जोर दिया जाता।[5] इन स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती थी वह लेने देने अथवा व्यापार

---

1 दस्तरी रिकार्डस्, फाइल नं. 9, पृ. 45
2 वही, पृ. 49
3 दस्तरी रिकार्डस्, फाइल नं. 9, पृ. 50
4 वही, पृ. 51
5 वही, पृ. 53

वाणिज्य और दैनिक हिसाब-किताब को करने के लिये पर्याप्त होती थी।

2 **मुस्लिम स्कूलें**—मकतबों में फारसी, अरबी और उर्दू की प्रारंभिक शिक्षा दी जाती थी। इसके साथ ही छात्रों को कुरान की आयतों को कंठस्थ कराया जाता था। हिन्दू शालाओं की भांति मुस्लिम स्कूल का भवन भी शिक्षक का घर मस्जिद-चबूतरा अथवा किराये का मकान होता था। मुस्लिम स्कूलों के अधिकांश शिक्षक एवं छात्र मुसलमान होते थे।

भाषा

साधारण वार्तालाप मारवाड़ी भाषा के माध्यम से होता था। यही राज्य की भाषा भी थी। राजकीय पत्र व्यवहार भी इसी भाषा के माध्यम द्वारा होता था।[1]

लिपि

मारवाड़ी भाषा की लिपि देवनागरी ही थी, परन्तु इसमें घसीट का पुट अधिक था। इस काल की ख्यातें इसी का प्रमाण हैं।

साहित्य

महाराजा अभयसिंह के दरबार में अनेकों चारण और कवि आश्रय पाते थे। चारण कविया करणीदान ने उसके आश्रय में रहकर सूरजप्रकाश नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की जिसमें रामचन्द्र और पुंजराज से लेकर अजीतसिंह तक संक्षिप्त हाल और अभयसिंह का सरबुलन्दखां के साथ लड़ाई तक का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यह एक विशाल रचना थी। महाराजा के पास सुनने के लिए समय नहीं था इसलिये कविया करणीदान ने इसका संक्षिप्त रूप 'विरद श्रृंगार' नामक ग्रन्थ की रचना की और उसे महाराजा को सुनाया। महाराजा अभयसिंह ने प्रसन्न होकर कवि को लाख पसाव और अलसाव गांव दिया तथा कविराज की उपाधि प्रदान की। इसके अतिरिक्त उसका सम्मान भी किया। स्वयं महाराजा घोड़े पर सवार होकर तथा कविराज को हाथी पर चढ़ाकर मंडोर से उसके घर तक पहुंचाने गया।[2] ये दोनों ग्रंथ महाराजा अभयसिंह के समय की अमूल्य निधियाँ हैं।

अन्य कवियों में भट्ट जगजीवन रचित 'अभोदय' (संस्कृत), वीरभाण

---

1 महाराजा अभयसिंह द्वारा लिखित पत्र।

2 इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

अस चढ़ियो राजा 'अभो', कवि चाढे गजराज।
पोहर एक जलेब में, मोहर हले महाराज॥

रचित 'राजरूपक'[1], रस पुंज रचित 'कवित्त श्री माताजी रा'[2], माधो राम रचित 'शाक्त भक्ति प्रकाश', 'शंकर पचीसी' तथा 'मांधवराव कुंडली' के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

'बिहारी सतसई' महाराजा को अधिक प्रिय होने से कवि सुरति मिश्र ने वि. सं. 1794 में 'अमर चन्द्रिका' नामक उसकी टीका बनाई थी।

रसचंद, सेवक, प्रयाग, भाईदास, सांवतसिंह, प्रेमचंद, शिवचंद, अनन्द-राम, गुलालचंद, भीमचन्द, पृथ्वीराय आदि अन्य कितने ही कवियों को महाराजा का आश्रय प्राप्त था।[3]

निर्माण कार्य

महाराजा को भवन आदि बनवाने का बहुत शौक था। उसने कितने ही नये स्थानों का निर्माण करवाया। इसके समय में जोधपुर में चांदपोल के बाहर अभयसागर नामक तालाब का बनना आरम्भ हुआ, परन्तु वह उसके जीवन में पूरा नहीं हुआ। मंडोर में महाराजा अजीतसिंह का स्मारक भी उसने बनवाना शुरु किया परन्तु वह भी पूरा नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त उसके समय में चरवां नामक स्थान में उद्यान, कोट महल, अडपहलू कुआं, मंडोर के गउमुख के पास ड्योढी के ऊपर बंगला तथा महल एवं पहाड़ के बीच सीतारामजी का मंदिर, जोधपुर के किले का पक्का कोट, बुर्ज एवं चौके-लाव कुआ, फतहपोल बनाए थे। फतहपोल दरवाजा अहमदाबाद-विजय की यादगार में बनवाया गया था। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद महाराजा बहुत से द्रव्य के साथ अनेक बहुमूल्य वस्तुएं लाया था। उनमें से 'दल-बादल' नामक बड़ा शामियाना, उसके बाद भी बड़े-बड़े दरबारों में काम में लाया जाता था और इंद्रविमान नामक हाथी का रथ सूरसागर में रखा था। जोधपुर के किले का फतहमहल का फूलमहल और कच्छवाहीजी का महल भी इसके बनवाये ही बताये जाते हैं।[4]

मनोरंजन

महाराजा एवं उच्च कुल के सदस्य अनेक प्रकार से अपना मनोरंजन करते थे—

---

1 मिश्र बन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ. 75

2 हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग, पृ. 131

3 राजपूताने का इतिहास, पहला भाग, पृ. 672

4 जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 2, पृ. 160-61
मारवाड़ का इतिहास, वि. ना. रेऊ, प्रथम भाग, पृ. 358

1 पहलवानों की लड़ाई एवं दाव-पेंच[1]

2 हाथियों की लड़ाई[2]

3 सिंह तथा भैंसे की लड़ाई[3]

4 जंगली पशु एवं पक्षियों का शिकार जैसे—

(अ) सिंहों का शिकार[4]

(आ) सूअर का शिकार[5]

(इ) खरगोश एवं हिरण का शिकार[6]

(ई) पक्षियों का शिकार—तीतर, बटेर, मुर्गाबी[7]

(उ) चीतल एवं काले हिरण का शिकार[8]

5 नृत्य, वाद्य एवं गायन[9]

6 नटियों एवं कलाकारों द्वारा नजुर्म प्रदर्शन[10]

इस प्रकार महाराजा व उनके कुल के सदस्य अपने मन बहलाने के लिये अनेक प्रकार के आयोजन करते थे। अधिकतर शासक नृत्य, संगीत आदि की जानकारी भी रखते थे। कवि करणीदान के अनुसार महाराजा अभयसिंह संगीत विद्या में प्रवीण थे।[11]

सामाजिक जीवन के मनोरंजन के माध्यम विभिन्न खेल थे जिनमें अपने को व्यस्त कर मानव सुख अनुभव करने लगता था।

1 चौपड़—साधारण जन समूह के मनोरंजन का माध्यम चौपड़ था। यह गोटियों द्वारा खेला जाता था।[12]

2 चण्डल-मण्डल—चौपड़ और शतरंज की तरह यह खेल था और यह 16 व्यक्तियों एवं 64 गोटियों के द्वारा खेला जाता था।[13]

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 205
2 वही, पृ. 206
3 वही, पृ. 209
4 वही, पृ. 208
5 वही, पृ. 211
6 वही, पृ. 212
7 वही, पृ. 213
8 वही, पृ. 213
9 वही, पृ. 152
10 वही, पृ. 191-204
11 वही, पृ. 135-259
12 सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मुगल एज, पी. एन. चोपड़ा, पृ. 61
13 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840
पुस्तक प्रकाश में प्राप्त पेंटिंग का संग्रह।

3 **चौगाण**—मैदानों में खेले जाने वाले खेलों में प्रमुख चौगाण था जो कि वर्तमान पोलो के समान था। यह शाही प्रभाव का प्रतीक था। नरेश एवं उच्च अधिकारियों के मनोरंजन का यह माध्यम था।[1]

4 **कुश्ती**—मारवाड़ी शूरवीर कुश्ती में अपने शौर्य का प्रदर्शन करते थे और इसके अतिरिक्त यह मनोरंजन का भी माध्यम था।

5 **दौड़**—घुड़दौड़ की प्रतियोगिताएं साधारणतया कुलीन वर्गीय लोगों में होती थीं।

6 **मृगया**—नरेशों और सरदारों का यह शाही व्यसन मृगया के नाम से सम्बोधित किया जाता था। मनोरंजन के साथ ही मृगया इनके शौर्य प्रदर्शन का भी माध्यम था।[2]

7 **नृत्य**—मारवाड़ में नृत्य की विविधताएं दृष्टिगोचर नहीं होती थीं। यहां की स्त्रियां ढोल पर एक ही प्रकार का नृत्य करती थीं। परन्तु नृत्य के द्वारा भी मनोरंजन होता था।

राजपूत नारियां

क्षत्राणियां पतिव्रता धर्म को पालन करने में ही मोक्ष की प्राप्ति समझती थीं। पति के मरण के उपरान्त जीवित रहने की तनिक भी कामना नहीं करती थीं। महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम की मृत्यु के उपरान्त उनकी दो रानियों को गर्भवती होने के कारण विवश होकर जीवित रहना पड़ा था किन्तु प्रसव के कुछ ही समय उपरान्त जब रानियों को अपने सम्मान और सतीत्व के नष्ट होने की आशंका हुई तो उन्होंने अपने सामन्तों के द्वारा अपनी हत्या करवाकर जमुना में प्रवाहित करने का आदेश दिया जो बाद में पूरा भी किया गया था।[3] महाराजा अजीतसिंह के साथ 6 रानियां और अनेक खवासों ने भी खुशी से चिता में प्रवेश किया था।[4] इसी प्रकार महाराजा अभयसिंह के साथ 2 खवास और 11 पर्दायत पुष्कर में सती हुई और 6 रानियां तथा 14 खवास व पर्दायत जोधपुर में सती हुई थीं।[5]

---

1 सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मुगल एज, पी. एन, चोपड़ा, पृ. 66

2 मृगया राजसी क्रीड़ा थी परन्तु इसका लोकोपयोगी महत्व भी कम नहीं था। ग्रामीण जनता को जंगल के पशु व्यथित करते थे। सिंह आदि जनता को त्रास पहुंचाते थे। तब राजा का परम कर्त्तव्य हो जाता था कि प्रजा की भलाई के लिये इन पशुओं का विनाश करे।

3 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 77

4 अजितोदय, सर्ग 31, श्लो. 32-33 और राजरूपक, पृ. 247-254

5 वीर विनोद, भाग 2, पृ. 849

1 स्त्रियों का समाज में स्थान—महाराजा अभयसिंह का समय स्त्रियों की हीनता का द्योतक था। समाज में स्त्रियों का स्थान नगण्य था। उनके व्यक्तित्व के उभरने का कोई साधन न था। न तो वे योग्य ही बन सकती थीं और न उपकारी। पुरुष उनके स्वामी एवं सर्वस्व होते थे। विधवा विवाह कुछ जातियों में था। राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचलन था और इसीलिए उन्हें 'नातरायत' राजपूत कहा जाता था। ब्राह्मण, उच्च राजपूत, महाजन, ढोली जातियों में विधवा विवाह नहीं होता था। माली, जाट, माली, सुनार, कुम्हार, धोबी, तेली, कलाल, भंगी आदि जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन था।[1]

त्यौहार

इस काल में मारवाड़ के सामाजिक जीवन में त्यौहार और मेलों का बहुत महत्व था। वर्ष पर्यन्त कई त्यौहार मनाये जाते थे जिनमें गणगोर, रामनवमी, अक्षय तृतीया, श्रावणी तीज, रक्षाबन्धन, गणेश चतुर्थी, देव झूलणा एकादशी, नवरात्रा, दशहरा, दीपावली, बसन्त पंचमी, होली, शीतलाष्टमी इत्यादि प्रमुख थे। इनमें कुछ जैसे गणगोर, श्रावणी तीज, दशहरा, शीतलाष्टमी आदि दोहरी भूमिका निभाते थे अर्थात् त्यौहार भी थे और इन अवसरों पर मेले भी लगते थे। ये त्यौहार और मेले आज भी लगभग उसी रूप में देखे जा सकते हैं।

1 गणगोर—गणगोर मुख्यतः स्त्रियों का त्यौहार था और भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा मारवाड़ में अधिक उल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाता था।[2] कन्याएं उपयुक्त पति की प्राप्ति और स्त्रियां अपने अखण्ड सौभाग्य के लिए इस त्यौहार को मानती थीं। होली जलने के दूसरे दिन से ही वे गणगोर (गवर, गौरी अथवा पार्वती) की पूजा करने लगती थीं और यह पूजन कार्य चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक चलता था। चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को मेले भरते। जिनमें 'गवर' (गणगोर) की सवारी किसी जलाशय पर ले जायी जाती थी। संगीत, नृत्य इस अवसर के मुख्य आकर्षण होते थे। स्त्रियां नाचती और गाती थीं जैसे—

'भंवर म्हांने खेलण दो गणगोर
म्हारी सहेलियां जोवे वाट'

(अर्थात् हे रसिक भंवर ! हमें गणगोर खेलने दो, मेरी सहेलियां प्रतीक्षा कर रही हैं।)

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 612-620
2 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 121

इस अवसर पर घुड़सवारी का भी प्रदर्शन होता था। एक कहावत प्रचलित है कि गणगोरयां नैं ही घोड़ा न दौड़े तो कद दौड़े ? (अर्थात् गणगोर के दिन भी यदि घोड़े नहीं दौड़ेंगे तो फिर कब दौड़ेंगे)। इस अवसर का एक अन्य आकर्षण दरबारों का आयोजन था जिसमें राज्य के सभी सरदार, अधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक सम्मिलित होते थे।[1]

2 राम नवमी—भगवान राम के जन्म दिन चैत्र शुक्ला नवमी को मनाया जाता था। इस अवसर पर मन्दिरों में संगीत, नृत्य, कीर्त्तन आदि होते थे। पुजारी लोग पंचेरी, पंचामृत, प्रसाद आदि तैयार करते थे जिसे दूसरे दिन लोगों में वितरित किया जाता था।[2]

3 अक्षय तृतीया—वैशाख शुक्ला तृतीया को 'आखातीज' (अक्षय तृतीया) का त्यौहार मनाया जाता था। इस त्यौहार पर सर्व साधारण 'गुलवाणी' (गुड़ और आटे का पकाया हुआ व्यंजन) और 'खीच' (गेहूँ का दलिया) बनाते थे।[3] इस अवसर पर विशेष दरबार लगाते थे, जिनमें सम्मिलित होने वाले सामान्यतः केसरिया रंग के वस्त्र पहिनकर आते थे। इस दिन को इतना शुभ माना जाता था कि मुहूर्त पूछे बिना इस दिन हजारों विवाह होते थे। आज भी स्थिति ज्यों की त्यों है। स्त्रियां यह पर्व भी सुहाग की रक्षा के लिए मनाती थीं।

4 श्रावणी तीज—गणगोर की तरह यह त्यौहार भी मुख्यतः स्त्रियों का त्यौहार होता था और भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा मारवाड़ में अधिक उल्लास के साथ मनाया जाता था। इस तीज (श्रावण शुक्ला तृतीया) को स्त्रियां व्रत रखती थीं और चन्द्र-दर्शन के बाद फल, सत्तू आदि खाती थीं।[4] दूज की रात को लोग अपनी बहिन-बेटियों के लिये मिठाई मंगवाकर उन्हें अवश्य देते थे। इस अवसर पर वृक्षों की डालों पर रस्सों के झूले डाले जाते थे और स्त्रियां गीत गाती हुई झूलती थीं।[5] झूले पर झूलने वाली स्त्रियां एक दूसरे से अपने पति का नाम पूछतीं और जब तक वे अपने पति का नाम नहीं बतातीं उन्हें बहुत परेशान करतीं।

---

1 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 121-122

2 महाराजा जसवन्तसिंहजी री ख्यात, पृ. 40
श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 123

3 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840; श्यामशदास, वीर विनोद, पृ. 123

4 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840; वही, पृ. 123

5 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840; श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 123

5 **रक्षा बन्धन**—श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को रक्षा बन्धन का त्यौहार मनाया जाता था। इसे राखड़ी कहते थे। यह मुख्यतः ब्राह्मणों का त्यौहार था। प्रतिष्ठित ब्राह्मण राज परिवार, सामन्तों, अधिकारियों इत्यादि के यहां जाते थे और उनके राखी बांधकर दक्षिणा प्राप्त करते थे।[1] सामान्य ब्राह्मण लोग अपने आसपास के परिवारों में जाकर राखी बांधते थे। बहिनें अपने भाइयों के राखी बांधती थीं व भेजती थीं और रक्षा का वचन लेती थीं।

6 **गणेश चतुर्थी**—यह भाद्रपद शुक्ला को मनाई जाती थी। इस अवसर पर गणेश पूजन होता था और विद्यार्थी अपने गुरु को दान-दक्षिणा देकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते थे।

7 **नवरात्रा**—आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्रे मनाये जाते थे। इस अवसर पर दुर्गा (शक्ति) का पूजन किया जाता था और नवमी के दिन बकरे व भैंसे की बलि दी जाती थी।[2] नौ दिन तक देवी की प्रतिमा के सन्मुख दीपक लगातार जलता रहता था। राजपूत लोग इस अवसर पर अस्त्र-शस्त्रों का पूजन करते थे।

8 **दशहरा**—भगवान की रावण विजय की स्मृति में आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता था। इसे विजयदशमी भी कहते हैं और यह मुख्यतः राजपूतों का त्यौहार था। इस दिन बांस तथा कागज से बना रावण का पुतला जलाया जाता था और रंग-बिरंगी आतिशबाजी भी की जाती थी। राज्य में विशेष दरबार का आयोजन होता था जिसमें सामन्तों तथा अधिकारियों की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी।[3] दरबार में संगीत और नृत्य के कार्यक्रम भी होते थे।

9 **दीपावली**—यह सर्वाधिक लोकप्रिय और विशेषकर वैश्यों का मुख्य त्यौहार था।[4] यह आश्विन कृष्ण 13 से कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक मनाया जाता था। आश्विन कृष्ण 13 (धन त्रयोदशी के दिन) पूजा के निमित्त नये बर्तन खरीदे जाते थे।[5] दूसरे दिन नरक चतुर्दशी के दिन दान पुण्य किया जाता था और अमावस्या के दिन लक्ष्मी पूजन होता था। मिट्टी के दीपक जलाये जाते थे तथा आतिशबाजी का आनन्द उठाया जाता था।

---

1 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840; श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 123
2 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 129
3 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840
4 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 130
5 देवस्थान जमा खर्च वही नं. 20, वि. सं. 1820-1840

दूसरे दिन अन्नकूट होता था। कातिक शुक्ल द्वितीया को भैया दूज मनाई जाती थी।[1]

10 **वसन्त पंचमी**—माघ शुक्ल पंचमी को मनाई जाती थी। इस दिन वसन्ती रंग के वस्त्र पहिने जाते थे। राज्य में विशेष दरबार लगता था जिसमें संगीत और नृत्य का आयोजन होता था।

11 **होली**—फाल्गुन मास के इस मादक त्योहार का मारवाड़ में अपना ही महत्व था। यह मुख्यतः निम्न जातियों का त्योहार था। होली जलने के पन्द्रह दिन पहिले से ही फ़ाल्गुन गीत गाये जाते थे। रात में लोग एकत्रित होकर गींदड़ आदि नृत्यों का आयोजन करते थे। लोक गीतों के साथ चंग (डफ) का उपयोग होता था। पूर्णिमा की रात्रि को होली जलाई (मंगलाई) जाती थी और अगले दिन स्त्री और पुरुष आपस में रंग खेलते थे और गले मिलते थे तथा हंसी-मजाक करते थे। इस दिन लोग किसी प्रकार की हंसी-मजाक को बुरा नहीं मानते थे।[2] इस प्रकार यह त्योहार पुरानी शत्रुता समाप्ति का अपूर्व अवसर प्रदान करता था। इस अवसर पर कई प्रकार के रंगीन वस्त्रों का उपयोग किया जाता था। इन्हें फागणियो, पीलियो और वसन्तियो कहते थे।

12 **शीतलाष्टमी**—चेचक के प्रकोप से दूर रहने की कामना के साथ 'शीतला' माता का पूजन किया जाता था।[3] पूजन वाले दिन लोग सामान्यतः गर्म भोजन नहीं बनाते थे और न गर्म भोजन खाते थे। पहले दिन बना हुआ ठंडा खाना खाते थे।[4] इस अवसर पर 'कागा' नामक स्थान पर जोधपुर में इस दिन शीतला माता का मेला लगता था।

13 **मुसलमानों के पर्व**—इस काल में मुसलमानों के विशेष पर्व ये थे—मुहर्रम, ईद-उल-फित्र, ईद-उल-जुम्रा, मोलाद शरीफ, शबे बरात आदि।

मेले

इस काल में अनेक मेलों का आयोजन होता था। पुरुष, स्त्रियां एवं बच्चे सामूहिक रूप से किसी धार्मिक स्थल पर एकत्रित हो जाते थे जहां देवताओं से मनौतियां मनाई जाती थीं अथवा इच्छा की पूर्ति होने पर चढ़ावा चढ़ाया जाता था।

1 रामदेवजी के मेले का यहां अधिक प्रचलन था। रामदेवरा (पोकरण)

---

1 श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 130
2 महाराजा जसवन्तसिंहजी री ख्यात, पृ. 52-53
3 हकीकत वही, वि. सं. 1820-40; मारवाड़ प्रेसी., पृ. 18
4 श्यामलदास, वीरविनोद, पृ. 131

में दो वार भादों सुदि 11 और माह सुदि 11 को रामदेवजी का मेला होता था। परन्तु भादों सुदि 11 का मेला अधिक वड़ा होता था। यहां मेवाड़, मालवा, गुजरात के व्यापारी भी आते थे। ठीकाई ग्राम में केसरिया कंवरजी का मेला भादों सुदि 9 को सम्पन्न होता था।[1]

2 नागौर—यहां के वसवानी ग्राम में रामदेवजी के दो मेले एक भादों सुदि 10 और दूसरा माघ सुदि 10 को होता था। यहां के ग्राम जुजांला में गुसांईजी के दो मेले एक आश्विन और दूसरा चैत्र सुदि 1 को भरते थे। इनके अतिरिक्त दो अन्य मेले दूधमति माताजी के एक आश्विन मास में और दूसरा चैत्र मास में होता था। मुन्दियाड़ में भादों सुदि 8 से सुदि 10 तक गणेशजी का मेला होता था। इन मेलों में जैसलमेर, वीकानेर की भी जनता भाग लेती थी। खाटू ग्राम में क्रमशः भादों और आसोज को मुसलमानों के मेले वालापीर का और शाहपीर के होते थे। इनका तीसरा मेला गांव रोहल में कार्तिक मास में जव्वेशरीफ का होता था।[2]

3 फलोदी—यहां चार मेले क्रमशः फलोदी, थोव, पांडूभरवरी और कुंचीपले में होते थे। यहां अधिकतर जैनी एकत्रित होते थे।[3]

4 परवतसर—भादों सुदि 10 को यहां तेजाजी का मेला होता था। यह सौदागिरी के लिए प्रसिद्ध था।

5 सांभर—भादों सुदि 8 को यहां माताजी श्री शाकम्भरीजी का मेला होता था।[4]

निष्कर्ष

यह अध्याय मारवाड़ के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालता है। संयुक्त परिवार प्रणाली के साथ-साथ समाज के वर्गों में वेशभूषा, आभूषण तथा खान-पान का विभेद था, यद्यपि सामाजिक पर्व एवं त्यौहार को सभी वड़े उत्साह से मनाते थे। सामाजिक असमानताओं एवं आर्थिक विषमताओं के अतिरिक्त भी मारवाड़ के निवासी साधारण एवं सरल जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि औपचारिक शिक्षा की वहुत कमी थी परन्तु ज्ञान की कमी नहीं थी। मारवाड़ी भाषा की लिपि घसीट देवनागरी थी और साधारण वार्तालाप की भाषा मारवाड़ी थी। अभयसिंह स्वयं साहित्य प्रेमी था और उसके दरवार में अनेकों चारण और कवि आश्रय पाते थे।

---

1 हकीकत वही, नं. 47, पृ. 324; मारवाड़ प्रेसी., पृ. 18
2 फर्स्ट एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, मुन्शी हरदयाल, पृ. 45
3 वही, पृ. 52
4 वही, पृ. 67

अध्याय 6

विभिन्न जातियों के धर्म

परिचय

पिछले अध्यायों में सामाजिक स्थिति का विवरण दिया है जिससे हमें इस बात का आभास हो सके कि उस समय के निवासियों का किस प्रकार का रहन सहन व रीति रिवाज थे। अब हम इस अध्याय में विभिन्न जातियों के धर्म का विश्लेषण करेंगे जिससे उनकी विभिन्न देवताओं के प्रति आस्था और उनके अन्ध विश्वास का अनुमान लगाया जा सके।

राठोड़

मारवाड़ के राठोड़ सनातन धर्मी होते थे। मारवाड़ के नरेश भी सनातन धर्मी थे। चामुण्डा, जोधपुर नरेशों की इष्ट देवी थी तथा नागणेची इनकी कुलदेवी थी।[1] मारवाड़ में एक पुराना मन्दिर नागणेची जी का गांव नागणा और परगने पचभदरे में था। दूसरा मन्दिर राव जोधा ने जोधपुर के किले पर बनवाया था।[2] नागणेचियां का थान राठौड़ों के गांव में अक्सर नीम के पेड़ के नीचे होता था इसलिये राठौड़ नीम के पेड़ को नागणेचियां देवी का रूप समझकर पालते थे और काटते या जलाते नहीं थे।

राठौड़ों के पूर्वज *गोरखनाथ एवं जलन्धरनाथ के भी उपासक थे।*[3] भैरव पूजा का भी प्रचलन था।[4] कुछ राठौड़ परिवार शैव भी होते थे। हनुमानजी की भी उपासना करते थे। इसके अतिरिक्त रामदेवजी, काला-गोरा भैरों आदि की उपासना करते थे। जो बहादुरी के साथ लड़ाई में लड़ते हुए काम आते थे उनकी भी राठौड़ों में पूजा की जाती थी। मर्द और औरतें उसकी मूर्ति चांदी अथवा सोने की बनाकर गले में पहना करते थे और उसे 'फूल' कहते थे। युद्ध में जाते समय अश्व और शस्त्र की पूजा करते थे। मेड़तिया

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 240
2 रिपोर्ट मर्दुमशुमारी, राज. मारवाड़।
3 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 109
4 वही, पृ. 151

राठोड़ कुल चतुर्भुज जी का इष्ट रखते थे और उनके नाम का पवित्रा पगड़ी पर बांधते थे जो एक रेशमी सरपेच वाला होता था और उसके कई फुन्दे लगे होते थे। जोधा, उदावत, चाम्पावत और कुम्पावत राठौड़ वैष्णव थे और वल्लभ कुल सम्प्रदाय के गुसांई की कण्ठी बांधते थे।

राठौड़ों का विश्वास सनातन धर्म में होने के कारण वैदिक अनुष्ठानों के प्रति राज-समाज में अपार श्रद्धा थी। जप-तप एवं यज्ञ में उनका पूरा विश्वास था।[1] राठौड़ शासकों ने 'गो रक्षा' (गाय की रक्षा) को अपने धर्म का अभिन्न अंग बना लिया था।[2] तीर्थ यात्रा को भी धार्मिक कर्त्तव्य समझा जाता था। मूर्ति-पूजा सर्वत्र प्रचलित थी। राठौड़ नरेश युद्ध में प्रस्थान करने से पूर्व विधिवत चामुण्डा देवी की पूजा करते थे।[3] राजा महाराजा मस्तक पर तिलक लगाते थे एवं तुलसी की माला पहनते थे।[4]

ब्राह्मण

मारवाड़ में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था। समाज में उनका बहुत सम्मान था। कोई भी मांगलिक कृत्य बिना ब्राह्मणों के द्वारा वेद पाठ के सम्पन्न नहीं होता था।[5] ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देना परम धर्म समझा जाता था। सबसे अधिक पुण्यकार्य दान देना समझा जाता था। गायत्री-जाप, वेद-मन्त्रों का उच्चारण, यज्ञ, प्रार्थना आदि अनेक धार्मिक कृत्य ब्राह्मणों के द्वारा जन साधारण करवाते थे। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण शिखा रखते थे, यज्ञोपवीत पहनते थे और तिलक लगाते थे।

1 पुष्करणा ब्राह्मण—मारवाड़ में पुष्करणा ब्राह्मणों की संख्या अधिक थी। ये लोग शिव और विष्णु के उपासक थे। इनमें देवी-उपासना कम थी।

पुरोहित या पिरोयत अधिक तो वैष्णव थे और कुछ शिव तथा शक्ति को भी पूजते थे। इनमें श्री पुरोहित के वंश वाले अधिक प्रसिद्ध थे। क्योंकि पुरोहित जयदेवजी ने महाराजा अजीतसिंह को बचपन के दिनों से पाला था। जब महाराजा अजीतसिंह मारवाड़ का मालिक हुआ तब जयदेव के बेटे जग्गा को श्री पुरोहित की पदवी दी और भाई कहकर सम्बोधित किया गया। महाराजा अभयसिंह के समय में भी यह परिवार राज्य का कृपा पात्र

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 81
2 वही, पृ. 82
3 वही, भाग 3, पृ. 22
4 वही, भाग 3, पृ. 24
5 मर्दुमशुमारी, पृ. 156

रहा। इससे उनकी सन्तानें बाद में भी पुष्करणा ब्राह्मणों में राठौड़ कहलाती थी और ये लोग इसी खिताब से अपने को बड़ा समझते थे। जब कोई पुष्करणा ब्राह्मण उनके यहां जाकर चरण-स्पर्श करता तो वे कहते थे कि 'मुजरा या जोहर करेंगे'।[1]

2 सिरमाली—सिरमाली अधिकतर तो शैव थे और कुछ सिरमाली। विष्णु और गणेश की भी उपासना करते थे और इष्ट महालक्ष्मी का रखते थे। महालक्ष्मी सिरमालियों की कुलदेवी थी। इसलिये जहां कहीं भी सिरमालियों की बस्ती थी वहां पर एक मन्दिर महालक्ष्मी का भी होता था।

3 जोशी या सांचोरा ब्राह्मण—इन सब ब्राह्मणों का धर्म वैष्णव था। ये लोग वालारिख और तरणरिख को भी पूजते थे जो इनके पूर्वज थे।

4 गौड़ ब्राह्मण—ये आद्य गौड़ कहलाते थे। सामान्यतया धर्म इनका वैष्णव था परन्तु कोई-कोई महादेव को भी पूजते थे।

5 दायमा ब्राह्मण—ये ब्राह्मण शिव भक्ति, विष्णु, गणेश तथा सूरज को पूजते थे। इसे पंचायतन पूजा भी कहते थे।[2]

दादूपंथी

ये परमेश्वर को राम के नाम से मानते थे और दादू-राम, दादू-राम जपते थे तथा जयरामजी की करते थे।[3] दादूजी की आज्ञा का पालन करते थे।

कायस्थ

पंचोली देवी का इष्ट अधिक करते थे। अपने को देवी का पुत्र कहते थे। आपस में 'जय माताजी और जय श्री जी' कहते थे। नवरात्री का व्रत अधिकतर मर्द और स्त्रियां आसोज और चैत्र के महीने में रखते थे। बहुत-से लोग हर महीने में अष्टमाह का व्रत रखकर रात को देवी का पूजन करते थे। मांस और शराब से परहेज नहीं रखते थे। मांस को शुद्धि और शराब को तीर्थ और कभी-कभी दोनों को प्रथम और द्वितीया कहकर भी बोलते थे। परन्तु औरतें सामान्यतया मांस नहीं खाती थीं। इसी कारण इनमें मांस को 'बारली तरकारी' कहते थे[4] और घर से बाहर ही पकाते थे। कार्तिक सुदि दूज और चैत्र वदि दूज को चित्रगुप्तजी का पूजन रात्रि में करते थे। इन

---

1 मर्दुमशुमारी पृ. 183
2 वही, पृ. 189
3 वही, पृ. 295
4 वही, पृ. 400

दिनों पूजन किये बिना पंचोली कुछ लिखते नहीं थे। कार्तिक सुदि 2 को तो चित्रगुप्तजी के पैदा होने का दिन मानते थे और चैत्र वदि 2 को इनका धर्मराज के पास नियुक्त होना मानते थे। इस कारण ये दोनों दिन धर्म-पूजन के माने जाते थे।

चारण

चारणों का धर्म शक्ति की उपासना था। ये देवी को जोगमाया के नाम से पुकारते थे। अपने में से ही बहुत-सी औरतों का शक्ति या देवी होना मानते थे[1] और उनकी पूजा भी देवी के समान करते थे। ऐसी कहावत कही जाती थी कि इनमें नौ लाख लोई ओढ़ने वाली चारणियाँ शक्ति हुई थीं, उन सबमें करणी-माता का विशेष महत्व था। करणी-मां की कसम चारणों में बहुत बड़ी कसम मानी जाती थी।

ओसवाल

ओसवालों का धर्म जैन-धर्म था। जैन सरावगी मंदिरमार्गी भी कहलाते थे क्योंकि ये मन्दिर जाते थे और पारसनाथजी इत्यादि तीर्थकरों की मूर्ति को पूजते थे। मन्दिरमार्गी हिन्दुओं के देवताओं (माताजी और हनुमानजी) को भी पूजते थे। ओसवाल जैन धर्म के अनुसार दया रखते थे। जीव-हिंसा नहीं करते थे और जब साधुओं के पास ज्ञान सुनने को जाते थे तब मुंह पर मुंगती (पट्टी) बांधते थे। 'समाई' रोज करते थे। यह इनका प्रतिदिन का आवश्यक नियम था।[2] हर महीने तिथियां 2, 5, 11, 4 और कोई-कोई अमावस तथा पूनम को उपवास रखते थे जिसको 'वास' कहते थे। भादों के महिने में कोई-कोई वदि 11 से सुदि 4 तक 8 दिन का उपवास और वदि 14 से 4 तक 5 दिन का उपवास बराबर रखकर धर्म ध्यान करते थे। इसको 'अठाई' और 'पजूसन' कहते थे। कोई कोई ओसवाल आसाढ़ सुदि 14 से ही व्रत शुरू करके भादों सुदि 4 तक कुछ-कुछ दिनों को छोड़कर व्रत रखते थे, इसे 'छमछरी' कहा जाता था। कुछ लोग जो अधिक श्रद्धा रखते थे आसाढ़ सुदि 14 से कार्तिक सुदि 14 तक बराबर थोड़े-थोड़े दिनों के फासले से रखते थे, इसको 'चौमासा' कहते थे। अठाई, पजूसन, छमछरी और चौमासे के दिनों में मन्दिरों में बहुत भीड़ रहती थी। जती और साधु उनको जैन सूत्र और दया धर्म के उपदेश सुनाते थे। उपवासों के सम्पूर्ण होने पर मर्द और औरत खुशी करते थे और बिरादरी में नारियल इत्यादि

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 225
2 वही, पृ. 4

ग्रौर हनुमानजी को भी पूजते थे। रामदेवजी ग्रौर पाबूजी को भी मानते थे। बिलाड़े की तरफ वाले सुनार ग्राईजी का डोरा बांधते थे। विश्वकर्मा को सब ग्रपना कुल देवता समझते थे। मगर कुलदेवियां ग्रलग-ग्रलग होती थीं।[1] जो विश्वकर्मा के दर्शन कर ग्राता था वह वहां से जनेऊ पहिनकर ग्राता था ग्रौर फिर कोई तो हमेशा उसे पहिने रहता था ग्रौर कोई थोड़े दिन ही पहिनता था।

सुतार

हमेशा जनेऊ पहिनते थे ग्रौर खाने-पीने में दूसरे खातियों से ज्यादा छूत का विचार करते थे। इनकी कुल देवी सावित्री थी।

माली

मारवाड़ में माली ग्रधिकतर महादेवजी को पूजते थे। शराब, मांस कुछ लोग खाते-पीते थे ग्रौर कुछ नहीं भी। जो खाते थे उनको न्यात बाहर नहीं किया जाता था।

बिसनोई

ग्रादि पुरुष जांभाजी ने ग्रपने शिष्यों को विष्णु पूजन पर ग्रधिक बल दिया था। इसके ग्रतिरिक्त ये लोग हवन करते थे ग्रौर शाम के समय पूजन भी करते थे। हर साल फाल्गुन सुदि 13 के दिन तलविया नामक स्थान पर ग्रपने गुरु की याद में इकट्ठे होते थे।[2] परन्तु इस समय में बिसनोई नाम के ही बिसनोई रह गये थे। उनमें कोई भी बात वैष्णव धर्म की नहीं रही थी। उन्होंने तिलक छाप लगाना छोड़ दिया था। कंठी ग्रौर माला भी नहीं रखते थे।[3] परन्तु विष्णुजी की मूर्ति को पूजते थे। बिसनोई गुसांई जांभाजी को मानते थे।[4]

धार्मिक विश्वास, चिन्तन और आस्था

सूरजप्रकाश में कविया करणीदान ने ग्रपने युग में प्रचलित धार्मिक विश्वासों एवं ग्रास्थाग्रों का पर्याप्त मात्रा में चित्रण अंकित किया है। मुगल सम्राटों की मुस्लिम धर्मपरस्त नीति की प्रतिक्रिया जन समुदाय में धार्मिक

---

1 मर्दुमशुमारी, पृ. 469
2 जांभाजी रा गीत ग्रोझ, भाग 1, पृ. 19-20 फुट नोट नं. 2
3 मर्दुमशुमारी, पृ. 99
4 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 218

2 यह विश्वास भी प्रचलित था कि अनिष्ट नक्षत्रों में उत्पन्न कन्या से विवाह करने वाला व्यक्ति यदि विवाह के समय अपना मस्तक काटकर महादेव के अर्पण कर दे तो महादेव की कृपा से वह पुनः जी उठेगा और फिर कन्या का अनिष्टकारी प्रभाव मिट जायेगा।[1]

3 ज्वालामुखी देवी की उपासना से अकाल के भय को टाला जा सकता है। यह विश्वास भी लोक मानस में प्रतिष्ठित था। राजा पुंज के पुत्र भानुदीप ने इसी प्रकार कांगड़ा का भयंकर दुर्भिक्ष दूर किया था।[2]

4 जनसाधारण का जंत्र-मंत्र में भी बहुत विश्वास था। यह विश्वास किया जाता था कि मंत्रों के द्वारा कठिन से कठिन कार्य की सिद्धि होती है यथा—

(अ) मंत्रों द्वारा जल पर अधिकार किया जा सकता है।[3]

(आ) आकर्षण मंत्र के बल से स्त्रियों को वशीभूत किया जा सकता है।[4]

(इ) इनके द्वारा आसमान में भी उड़ा जा सकता है।[5]

5 जनसाधारण का योगियों एवं सिद्धों में बड़ा विश्वास था। योगी जलंधरनाथ ने पुंज के पांचवें पुत्र को जल पर अधिकार करने का मंत्र सिखाया था।[6] सोम भारती सिद्ध ने राजा पुंज के पुत्र उग्र को हिंगलाज देवी को प्रसन्न करने की सिद्धि प्रदान की थी।[7] ऐसा विश्वास किया जाता था कि सिद्ध पुरुष अपनी सिद्धि के द्वारा मृत व्यक्तियों को भी जीवित कर सकते हैं तथा रसायन सिद्ध पारे को खाने से बहुत शक्ति की प्राप्ति होती है।[8]

6 भूत-प्रेत, पिशाच, योगिनियों आदि में भी जनसाधारण का विश्वास था। भैरव एवं वीर भद्र की उपासना से भूत प्रेतों पर विजय प्राप्त की जा सकती है, यह धारणा भी प्रचलित थी।[9]

7 यह भी विश्वास प्रचलित था कि पुत्र की प्राप्ति के लिये शिव की

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ. 100
2 वही, भाग 1, पृ. 88
3 वही, भाग 1, पृ. 109
4 वही, पृ. 121
5 वही, पृ. 120
6 वही, पृ. 109
7 वही, पृ. 138
8 वही, पृ. 192
9 वही, पृ. 147

है। 'माया झपट करे चिनगा है।'[1] इस प्रकार उस युग में ज्ञान मार्ग की कठिनता के कारण भक्ति मार्ग ही अधिक प्रचलित था।

धार्मिक कृत्य

इस समय विभिन्न प्रकार के धार्मिक कृत्य एवं कर्मकांड प्रचलित थे जिनका उल्लेख सूरजप्रकाश में कवि ने किया है। सबसे अधिक पुण्य कार्य दान देना समझा जाता था। सोलह प्रकार के दान देने का उल्लेख कवि ने किया है।[2] गायत्री का जाप, वेद मन्त्रों का उच्चारण, नवधा भक्ति, यज्ञ, प्रार्थना आदि अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्यों में जन साधारण का विश्वास था।[3] इनके अतिरिक्त स्नान करना, तर्पण करना, गाय दान देना, शिखा रखना, यज्ञोपवीत धारण करना, पीताम्बर पहनना, तिलक लगाना, गंगा जल लेना, भाल पर चन्दन लगाना आदि अनेक कर्मकाण्डों को उस समय में किया जाता था जिनका उल्लेख हमें सूरजप्रकाश से प्राप्त होता है।[4] योद्धागण भी युद्ध में जाने से पूर्व स्नान ध्यान करके तुलसी माला धारण करते थे।[5] तीर्थाटन में भी लोगों का विश्वास था। स्वयं महाराजा अभय-सिंह ने तीर्थ यात्रायें की थीं। राजा लोग तीर्थों की रक्षा के लिए तैयार रहते थे।[6]

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने धार्मिक मान्यताओं का एक संक्षिप्त विवरण दिया है। उस समय व्यक्तियों में अधिक मात्रा में धार्मिक विश्वास व आस्था पाई जाती थी और अंधविश्वास एवं परम्परागत मान्यताओं का भी स्थान था। भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण एक अभिन्न अंग बन चुका था।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म रहा है, इसलिए धर्म का निर्वाह, उसकी रक्षा हमारे पूर्वजों का सर्वोच्च आदर्श था। राजस्थान के शासकों और प्रजा ने धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिये बड़े त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत किया है।

हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि मन्दिरों, पवित्र तीर्थ स्थानों,

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 341
2 वही, भाग 2, पृ. 342
3 वही, भाग 2, पृ. 156
4 वही, पृ. 155
5 वही, पृ. 156
6 वही, पृ. 19

मूर्तियों और स्मारकों की रक्षा के लिए यहां के वीरों ने बड़े-बड़े बलिदान किये थे। गौ (गाय) ब्राह्मण और स्त्री के सम्मान के लिए उन्होंने प्राणों की बाजी लगा देने में भी संकोच नहीं किया।

गांवों के वृत्तांतों से प्रकट होता है कि प्रत्येक परगने में से अनेक ग्राम, कुएं, खेत आदि ब्राह्मणों को दान दिये गये थे[1] जिनका उपभोग वे पीढ़ी-दर पीढ़ी करते थे। व्यक्ति विशेष के अतिरिक्त कितने ही मंदिरों और देवस्थानों के सेवा खर्च के लिये भी गांव व भूमि प्रदान की गई। गायों के लिये जागीर की भूमि में से अनेक गांवों में गोचर-भूमि (चरागाह) छोड़ने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

यहां की जनता के धार्मिक संस्कारों के निर्माण में लोक देवताओं का भी बहुत महत्व था। 14-15 वीं शताब्दी में अवतरित होने वाले मारवाड़ के पांचों पीरों[3]—पाबू, हड़बू, रामदेव, गोगादे, तथा मेहा (मांगलिया) के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी *नैणसी की 'परगणा री विगत'* से हमें प्राप्त होती है।

राजस्थान में शक्ति पूजा की प्रधानता रही है। राजपूत जाति की प्रत्येक शाखा की कुल देवियों[4] की महत्ता ने लौकिक जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। इन देवियों के मुख्य स्थान मारवाड़ के अनेक गांवों में आज भी विद्यमान हैं। सार्वजनिक हित के लिए कुएं, तालाब, बावड़ियें आदि खुदवाना तथा मन्दिर आदि बनवाना भी बड़ा धार्मिक कार्य माना जाता था। प्रत्येक शासक, उसकी रानियां तथा राजघराने से सम्बन्धित व्यक्तियों व अधिकारियों द्वारा करवाये गये इस प्रकार के निर्माण कार्यों का उल्लेख अनेकों स्थानों पर प्राप्त होता है जिससे उनकी धार्मिक प्रकृति और समुदाय विशेष में आस्था आदि का पता लगता है। तीर्थ यात्राओं का भी इस समय विशेष प्रचलन था और इन यात्राओं में दान पुण्य भी बहुत दिया जाता था।

---

1 राजस्थानी भाषा में ऐसी जमीन को डोली की भूमि कहा जाता था।

2 छोटे जागीरदारों तथा भोमियों के लिए ग्राम आदि देना सम्भव नहीं था अतः कुआ, खेत या गोचर भूमि ही दान की जाती थी।

3 'पाबू हरबू रामदे गोगदे जेहा
पांचू पीर पधारजो मांगलिया मेहा'

4 चारण पत्रिका, भाग 1, अंक 3-4

अध्याय 7

आर्थिक स्थिति

परिचय

इस अध्याय में हम अभयसिंह के समय की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा देंगे जिससे हमें उस समय के आर्थिक जीवन का आभास हो सके। इस समय व्यक्तियों के आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण भाग कृषि था और कृषि के विकास में विभिन्न राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों का काफी प्रभाव पड़ा था।

वित्तीय व्यवस्था

खालसा आय अभयसिंह के समय में से 13 से 15 लाख रुपया वार्षिक थी।[1] मुख्य आय के स्रोत थे : हवाला गांवों से प्राप्ति (लगान वसूली), लागती रकम (जो कचहरी से प्राप्त होती थी), सायर (चूंगी व उत्पादन कर), दरीवास (नमक से आय), कोतवाली चोंतरा (जहां कोतवाल अपना दफ्तर लगाता था), टकसाल, रेख (सामन्तों पर लगने वाला सैनिक कर), हुक्मनामा (जागीरदारों पर लगने वाला उत्तराधिकार कर), तलवाना (दरबार को घर पर बुलाने के लिये दिया जाता था), नजर (वह रकम जो महाराजा को विभिन्न अवसरों पर दी जाती थी) इत्यादि।[2] विभिन्न मदों से प्राप्त आय का ब्यौरा नहीं मिलता है।

सामन्तों के पास जो भूमि थी उसमें से सरकारी खजाने में आय कम प्राप्त होती थी, क्योंकि वे रेख के भुगतान के लिए टालमटोल करते थे। यद्यपि उनके द्वारा 'हुक्मनामे' का भुगतान अवश्य होता था।

राज्य कर्मचारियों को उस समय उनके वेतन खजाने से नकद में न देकर राज्यभूमि से प्राप्त आय में से दिया जाता था। भू-राजस्व वसूल करने के लिए कुशल व्यवस्था की भी कमी थी इसलिए शासक को अधिकांश गैर-कृषि आय पर ही निर्भर रहना पड़ता था।

---

1 वही जमा खर्च, वि. सं. 1815
2 वही।

कृषि आय में खालसा से आय, उत्तराधिकार और भेंट फीस, जो जागीरदारों द्वारा दी जाती थी, महत्वपूर्ण थी। अभयसिंह के समय में 4370 गांव थे जिसमें 650 गांव खालसा थे और जो दरबार के प्रत्यक्ष प्रबन्ध के अन्तर्गत थे। 74 गांव मुशतरका थे अर्थात् जिनकी आय दरबार और निश्चित जागीरदारों द्वारा संयुक्त रूप से विभाजित होती थी। बाकी बचे हुए 3646 गांव विभिन्न भू-पद्धति जैसे जागीर, भूम (वह जमीन जो सेवाओं के बदले दी जाती थी), इनाम, इत्यादि के अन्तर्गत थे।[1]

भू-पद्धति

भूमि कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी जिसका सर्वोपरि स्वामित्व राज्य का माना जाता था। राज्य को इस बात का अधिकार था कि वह भूमि का स्वामित्व किसी को भी प्रदान कर दे। भू-पद्धति का वर्गीकरण निम्नलिखित था—

1 खालसा 2 गैर-खालसा

1 खालसा—खालसा भूमि पर राज्य का अन्तिम स्वामित्व माना जाता था परन्तु व्यावहारिक रूप में जो व्यक्ति इसकी काश्त करते थे उन्हें उसका पूर्ण अधिकार दिया जाता था और यह अधिकार जब तक रहता था तब तक वे लगान का भुगतान करते थे। 'बापीदार' और 'गैर बापीदार' दो प्रकार के काश्तकार होते थे। सभी बापीदारों को भूमि के स्वामित्व अधिकार थे जबकि गैर-बापीदार केवल 'स्वेच्छा-काश्तकार' ही थे जिन्हें इस प्रकार के कोई अधिकार नहीं थे। बापीदार किसानों को पट्टा प्राप्त होने से उनका जमीन पर पूरा अधिकार हो जाता था। वे इस जमीन का रहन और उसका बेचान भी कर सकते थे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि व्यावहारिक रूप में खालसा भूमि उनकी थी जो उसको काश्त करते थे। इस समय के उपलब्ध प्रमाणों से यह बात स्पष्ट होती है कि ऐसी भूमि का बेचान, रहन पर देना और ठेके पर देना एक सामान्य प्रथा थी।[2]

2 गैर-खालसा भू-पद्धति—गैर-खालसा भूमि विभिन्न भू-पद्धतियों के अन्तर्गत थी। राजपूतों में जिनके पूर्वज मारवाड़ में राठौड़ों की विजय से पूर्व आ चुके थे, 'भूमि चारा' भू-पद्धति के अनुरूप भूमि रखते थे। उन्हें 'फौज बाल' (सीमा के निकट के गांवों को अपनी सुरक्षा के लिए देना पड़ता था) एवं 'खिचरीलाग' देना पड़ता था। उनकी भूमि दरबार द्वारा ले ली जाती थी, यदि वे

---

1 अभयसिंह की ख्यात, पृ. 120
2 हकीकत बही, वि. सं. 1820 से 1840 (1763 से 1783), पृ. 20

कोई अपराध या राज्य के विरुद्ध षडयंत्र करते थे और उनके उत्तराधिकार के लिए पट्टा देना नामन्जूर कर दिया जाता था। किसी भी ठाकुर के जवान पुत्रों को उनके निर्वाह के लिये 'जीविका' भू-पद्धति दी जाती थी जिस पर तीन पीढ़ियों पश्चात् 'रेख' और उत्तराधिकार फीस दी जाती थी। यदि बिना किसी उत्तराधिकारी के वह व्यक्ति मर जाता था तो भूमि वापिस दरबार की हो जाती थी।[1]

जिनके पास जागीर भू-पद्धति के अनुसार भूमि होती थी उन्हें 'रेख' का भुगतान करना पड़ता था और प्रत्येक हजार आय पर एक घुड़सवार देना पड़ता था। 750 रु. की आय पर एक ऊंट सवार और 700 की आय पर एक पैदल सिपाही देना पड़ता था। हुक्मनामा भी रेख का 75 प्रतिशत भाग होता था और वह 'तागिरत' (यह एक स्वेच्छित कर था जो जागीर क्षेत्र के किसान देते थे) और मुत्सद्दी खर्च (यह एक विशेष कर था जो जागीरदारों को प्रशासन के व्यय के लिए देना पड़ता था) के अतिरिक्त दिया जाता था। जो नकद में नहीं दे सकते थे वे एक साल के लिए अपनी भूमि खालसा में दे देते थे। यदि उनके वंश में मर्द उत्तराधिकारी नहीं होता था तो जागीर को खालसा घोषित कर दिया जाता था।[2]

जब भूमि सेवाओं के बदले दी जाती थी उसे 'पसायत' भू-पद्धति कहते थे और जब वह व्यक्ति सेवाएं देना बन्द कर देता था तब वह भूमि दरबार द्वारा वापिस ले ली जाती थी।[3]

लगान-स्वतन्त्र भूमि जो ब्राह्मणों या चारणों को दी जाती थी जिसे 'सासन' और 'डोली' के नाम से पुकारा जाता था, दरबार के आधीन उस समय आ जाती थी जब असली व्यक्ति (जिसे भूमि इस प्रकार से दी जाती थी) का वंशज कोई नहीं होता था।[4]

वह भूमि 'नानकर' कहलाती थी जो राजपूतों को उनके निर्वाह के लिए दी जाती थी। इसमें विशेष बात यह थी कि उन्हें न तो कोई कर चुकाना पड़ता था और न ही कोई सेवा देनी पड़ती थी।

लगान-स्वतन्त्र भूमि जिसे 'इनाम' कहा जाता था और जो सेवाओं के बदले दी जाती थी वह भी दरबार के हाथ में कोई सही उत्तराधिकारी न

---

1 दी रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ एण्ड लीडिंग परसनेजेस ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, सरकारी छापाखाना, कलकत्ता, 1924.
2 मुन्शी दरदयाल, तवारीख ऑफ जागीरदारान, पृ. 1-7
3 हथ वही, नं. 4, एफ 375
4 वही, एफ 376

होने पर आ जाती थी। व्यक्तियों द्वारा 'डुम्बा' भूमि को काश्त में एक निश्चित रकम के भुगतान पर लिया जाता था।

'जागीर' और 'जीविका' भूमि में जेष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया था परन्तु अन्य भूमियों में सभी उत्तराधिकारियों में समान विभाजन किया जाता था। किसी भी भूमि का बेचान व रहन रखना आठ वर्ष से अधिक नहीं हो सकता था।[1]

चरणोत भूमि चरागाहों के काम में ली जाती थी जो गांव की सामान्य सम्पत्ति मानी जाती थी या कई गांवों की सम्मिलित सम्पत्ति होती थी।

3 **लागती रकम**—भूमिकर से आय दरबार की आवश्यकताओं से कम पड़ती थी इसलिये दरबार द्वारा अन्य कर लगाये जाते थे जिनका कृषि व गैर कृषि जनता द्वारा भुगतान होता था। इस प्रकार के करों को लाग या लागती रकम के नाम से पुकारा जाता था। बहुत से लाग अजीतसिंह के समय से शुरु हुए थे। जनता ने औरंगजेब के विरुद्ध दरबार को आर्थिक सहायता देने के लिये अपनी इच्छा से लाग देना शुरु किया था।[2] अभयसिंह ने भी इस लाग को जारी रखा और इस प्रकार यह एक ऐच्छिक कर स्थायी कर बन गया।

यह 'लाग' विभिन्न प्रकार के राज्य के विभिन्न भागों में लगाये जाते थे जैसे 'तलबाना', 'हासिल', 'मुक्ता', 'फरोई', 'चोधर', 'सुकराना', 'बट्टी', 'पट्टा', 'घारु' लाग इत्यादि और कुछ ऐसे लाग थे जो विशेष स्थानों पर विशेष उद्देश्य से लगाये जाते थे।[3]

लागों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ को गृह और भूमि कर के रूप में लगाया जाता था और वे चार आने से 10 रु. प्रति वर्ष लगाई जाती थीं। जो गैर कृषक धनवान व्यक्ति थे उनसे दर अधिक ली जाती थी।

किसानों से गृह कर जैसे झूमपी, लवाजमा, घूमरी, खार कर इत्यादि के नाम से लिया जाता था। अमीर गैर कृषकों से 'खोलदी बरद' के रूप में लिया जाता था। जो कृषक अपने पशुओं के लिये बाड़ा रखते थे उन्हें 'बाड़ा बरद' चुकाना पड़ता था।[4]

पशुओं पर विभिन्न दरों के अनुसार चारे सम्बन्धित कर जिसे 'घासमारी' कहते थे, लगाये जाते थे।

---

1 दी रूलिंग प्रिन्सेस, चीफ एण्ड लीडिंग परसनेजेस ऑफ राजपूताना एण्ड अजमेर, पृ. 17
2 अर्जी बही, नं. 4, एफ 87
3 बही जमा खर्च, वि. सं. 1815
4 वही।

बहुत से व्यावसायिक कर लगाये जाते थे जैसे रेगरों पर 'खादी', सुथारों पर 'बसोला' या खातोद, मोचियों पर 'पगरखी', मालियों पर 'हौद भराय', महाजनों पर 'तावारी', व्यापारियों पर 'दवात पूजा', साधों पर 'रखाली', कुम्हारों पर 'आवा', मिठाई बनाने वालों पर 'कन्दोई की लाग'।[1]

हलों पर भी कर लगाये जाते थे जिसे हलमा, कुनार आदि के नाम से पुकारा जाता था। कुओं के स्वामियों को भी कई प्रकार की लाग देनी पड़ती थी जिन्हें 'मुरगुरी', 'घोर', 'सनावज', 'कुर' इत्यादि कहा जाता था।

बहुत से अवसरों पर जैसे सन्तान जन्म, मृत्यु और विवाह जो राजघराने से सम्बन्धित होते थे, राजा द्वारा जनता से कुछ शुल्क के रूप में लिया जाता था। राजकुमार के जन्म दिन व सिंहासन पर बैठने पर नजर के रूप भेंट दी जाती थी।[2] विवाह के समय जिसे 'चंवरी कर' कहते थे, राज्य की तरफ से लिया जाता था। वह चार आने से आठ आने की दर पर वसूल होता था।

4 लागबाग जागीरी क्षेत्रों में—जागीरदार अपनी प्रजा पर भी कई प्रकार के लाग लगाते थे, वे 'हकूमत लाग' से अधिक थे और उनका भार किसान लोगों पर काफी मात्रा में था। बहुत से लाग तो जनता में अप्रिय थे जैसे 'खारकर', 'कान्सा', 'मुकराना', 'लाश', 'मापा', 'हल', 'भवाली' आदि। 'खार कर' लाग के अन्तर्गत जागीरदार को यह अधिकार था कि वह किसान से निःशुल्क मजदूरी फसल के बोने और काटने के समय ले सकता था अन्यथा वह किसान से इसके एवज में नकद के रूप में पैसा लेता था (काम की मजदूरी के हिसाब से)।

'कान्सा' लाग के अन्तर्गत किसान को अनिवार्य रूप से जागीरदार और उसके अनुयायियों को खाना खिलाना पड़ता था।

'मुकराना' लाग वह लाग था जो मकानों में हवा, रोशनी आने के लिये खिड़कियां रखने पर लगाया जाता था।

'लाश' लाग के अन्तर्गत जागीरदार गांव वालों को निजी सेवा ठिकाने की भलाई के लिये करवाता था जैसे घास काटना, फसल की देखरेख करना, भवन निर्माण के सामान को लाना आदि।

'मापा' वस्तुओं की बिक्री कर था। 'हल' लाग उन किसानों पर लगता था जो असिंचित भूमि काश्त करते थे।

'भवाली लाग' सिंचित भूमियों पर जो दो या दो से अधिक बैल की जोड़ी का उपयोग करते थे।

5 **गैर कृषि आय**—गैर कृषि आय का मुख्य साधन 'सायर कर' था जो

---

1 वही जमा खर्च, वि. सं. 1815

2 हकीकत वही, वि. सं. 1820-1840

जव दरवार या भू-स्वामी का हिस्सा केवल अनुमान द्वारा ही किया जाता था और उत्पादित अनाज का नाप-तोल नहीं किया जाता था उस प्रकार की रीति को 'कुन्ता' कहते थे। 'कांकर कुन्ता' में सारी उपज का अनुमान फसल के खड़े रहते रहते ही किया जाता था और दरवार का भाग उसी के आधार पर लगाया जाता था। इनके अतिरिक्त तीन अन्य रीतियां कर वसूली की प्रचलित थीं—'मुक्ता', 'डोरी' और 'घूघरी'। मुक्ता के अन्तर्गत एक निश्चित मात्रा—नकद या उपज—प्रति खेत वसूल की जाती थी जवकि डोरी को प्रति वीघा के अनुसार निर्धारित किया जाता था। जो भाग प्रति कुए के आधार पर लिया जाता था उसे घुंघरी कहते थे।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि गांव स्वावलम्वी थे जहां पर रहने वाले मिलजुल कर उत्पादन क्रियाओं में लगे रहते थे। परन्तु काश्तकारों में इतना साहस और काम करने की जिज्ञासा नहीं थी जितनी कि होनी चाहिए। वे अच्छी फसल के समय में लगान का भुगतान कर देते थे और अतिरिक्त उत्पादन को वेचकर नकद रुपया प्राप्त कर अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएं प्राप्त करते थे। परन्तु अच्छी फसल न होने पर (जैसाकि अधिकतर होता था) किसानों को अपना एवं परिवार का निर्वाह करने के लिये उधार पर रहना पड़ता था।[1] जो भी कुछ न्यूनतम आय किसानों को होती थी या जो कुछ भी वचा पाते थे वह अकाल, वीमारी और लड़ाइयों तथा शादी-विवाह के अवसरों पर खर्च हो जाता था। युद्धों के समय जिन क्षेत्रों से फौजें गुजरती थीं उन क्षेत्रों को वहुत हानि होती थी। इस प्रकार किसानों की हालत वड़ी दयनीय रहती थी।[2]

ग्रामीण उद्योग और लघु लद्योग

ग्रामीण उद्योग और लघु उद्योग के अन्तर्गत कृषि उत्पादन पर आधारित उद्योगों, जैसे अशुद्ध खांड और विभिन्न प्रकार के तेल निकाले जाने के उद्योग कहे जा सकते हैं।

कुम्हारों द्वारा मिट्टी के वर्तन वनाये जाते थे। वलाई और चमार चमड़ा निकालना और जूते तथा चमड़े की पखाल आदि वनाते थे।

लुहार लोहे को गलाने का काम और कृषि यन्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र, ताला-चावी, धुरी, कील आदि वनाते थे।

सुनार वहुत सुन्दर और जड़ाव के काम के जेवर वनाते थे। जोधपुर के सुनार आभूषणों पर वारीकी से काम करने के लिये विशेष प्रसिद्ध थे।

---

1 जी. एन. शर्मा, पृ. 300

2 टॉड, ऐनाल्स।

सुतारों द्वारा हल व लकड़ी का अन्य सामान बनाया जाता था ।

किसान का फालतू समय रस्सी बनाने और कृषि यन्त्रों को सुधारने में व्यतीत होता था ।

कुटीर उद्योग

कुटीर उद्योग का इस काल में बहुत महत्व था । जोधपुर तथा मेड़ता के मिट्टी के रंगीन खिलौने, मकराना की संगमरमर की वस्तुएं, मेड़ते एवं पाली में हाथी दांत की चूड़ी आदि । नागोर में लाख के रंगे हुए लकड़ी के खिलौने आदि उल्लेखनीय हैं । पाली में लोहे का काम तथा सोजत में घोड़े की लगामें एवं जीण के उद्योग उल्लेखनीय हैं । जोधपुर में कपड़े की छपाई बहुत सुन्दर होती थी ।[1]

शहरों में उद्योग

गांवों का कार्य आवश्यकताओं की पूर्ति और कच्चे माल का उत्पादन करना था जबकि शहरों में मुख्य काम वस्तुएं तैयार करना और उनको निर्यात करना था । राज्य के औद्योगीकरण में सामन्तों का भी एक महत्वपूर्ण स्थान था । मुगल बादशाहों के दरबार में जाने से और वहां के विलासपूर्ण जीवन को निकट से देखने से उनमें भी विलासिता का जीवन व्यतीत करना, अच्छा पहिनना और बढ़िया खाना खाने और सम्राटों की तरह से रहने का शौक बढ़ गया था । फर्श पर गलीचे और दरवाजों पर पर्दे लगाने की भी अमीरों की आदत हो गई थी । इन बड़े आदमियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये राज्य में भी अनेकों उद्योग आरम्भ हुए थे, जैसे कपड़े का उद्योग । पाली इस समय कपड़े के निर्यात का मुख्य केन्द्र बन गया था । कपड़े की रंगाई, छपाई के उद्योग भी बढ़ गये थे । बड़े घरों की औरतें बारीक कपड़े का प्रयोग करती थीं अतः इस उद्योग में बहुत अधिक उन्नति हुई थी ।[2]

नैणसी की ख्यात में इस बात का वर्णन प्राप्त होता है कि उस समय कपड़ा, तम्बाकू, अनाज और नमक में अन्तरराज्यीय व्यापार होता था और एक परगना दूसरे परगने से सड़कों द्वारा मिल गया था और एक दूसरे के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे । दस्तरी रिकार्ड से यह पता लगता है कि अकाल के समय में जोधपुर में जो बाहर के परगनों से अनाज आता था उसका स्वागत होता था और अनाज लाने वालों को इनाम दिया जाता था । वि. सं. 1840

---

1 महाराजा अजीतसिंह, पालीवाल, पृ. 157
2 हकीकत बही, वि. सं. 1820 (1763 ए. डी.)
3 नैणसी री ख्यात, एफ. एफ. 47 ए, 98 ए, 134 ए ।

(1783 ए. डी.) में जोधपुर के महाराजा ने धन्ना, दुर्गा, मोती और उनके नेता लाल को, जो जोधपुर में अनाज लाये थे, मोतियों के हार और वस्त्र इनाम में दिये थे।[1]

व्यापारिक वस्तुओं में अधिकतर कीमती वस्त्र, सोने-चांदी एवं जवाहरात के आभूषणों का उल्लेख हमें सूरजप्रकाश से प्राप्त होता है। बड़े-बड़े व्यापारियों द्वारा लाखों के क्रय-विक्रय का भी ज्ञान सूरजप्रकाश से प्राप्त होता है।[2] इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक व्यवसाय करने वालों का ज्ञान होता है—रसायनिक एवं वैद्यराज, ज्योतिषी एवं तर्कशास्त्र, जरी एवं कसीदे के कारीगर, स्वर्णकार एवं अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले, रंगरेज एवं रास याचक एवं भिखारी कामगार आदि।

बुद्धिजीवी वर्ग में ज्योतिषियों एवं तर्क शास्त्रियों के अतिरिक्त पंडितों, कविराजों एवं वेदज्ञ ब्राह्मणों का भी उल्लेख मिलता है।[3] राज दरबार में संगीतज्ञों, नर्तकों एवं कलाकारों के द्वारा कला प्रदर्शन का भी वर्णन प्राप्त होता है। नृत्य करने वाली गणिकायें भी राजाओं का आमोद-प्रमोद करके अर्थ उपार्जन किया करती थीं।[4]

उस समय में वे व्यक्ति जो उद्योगों द्वारा जीवन उपार्जन करते थे उनकी संख्या उन व्यक्तियों की तुलना में जो कृषि से जीवन उपार्जन करते थे, कम थी। उस समय के औद्योगिक जीवन में फुटकर दस्तकारी व्यवसाय जो स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, एक विशेष धन्धा रहा है। बुनने वाले मिस्त्री, सुतार, दर्जी, मोची, कसाई द्वारा फुटकर आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। उनकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति मध्यम वर्ग के द्वारा होती थी इसलिए वे सदैव कर्ज में रहते थे। उनकी आर्थिक दशा दयनीय थी। जोधपुर की जमा-खर्च वही में कुछ नाम उल्लेखित हैं जैसे भैरुदा का खेमो और नामा का लखमो किसान द्वारा उनका ऋणदाता हेमराज को ऋण के भुगतान के लिए अपनी सारी फसल बेचने का वचन दिया था।[5]

आयात-निर्यात

आयात की मुख्य वस्तुएं थीं कपड़ा, खजूर, नारियल, कांच, सोना,

---

1 दस्तरी रिकार्ड, वि. सं. 1840 (1783 ए. डी.)।
2 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 156
3 वही, पृ. 188
4 वही, पृ. 189
5 वही जमा खर्च, जोधपुर, वि. सं. 1815 (1758 ए. डी.)।

हाथी, शराव, मेवा, कसीदे किये हुए पर्दे और सजावट की वस्तुएं।[1] वहुधा जो व्यापारी वाहर से इस राज्य में आते थे उनके सुरक्षित यात्रा का प्रवन्ध राज्य की तरफ से किया जाता था। लालू और मलोत्र जो हाथी के व्यापारी थे वे दिल्ली से जोधपुर आये थे तो राज्य ने उनकी यात्रा की सुरक्षा का प्रवन्ध किया था और हाथियों के दाम देने के साथ-साथ उनको सम्मान पोशाक देकर विदा किया था।[2]

व्यापार को अधिक सुगम वनाने के लिये सड़क यातायात पर भी ध्यान दिया गया था। अजितोदय के अनुसार मेवाड़ और गोड़वाड़ के बीच सीधा रास्ता था।[3] अभयविलास के अनुसार जयपुर से जोधपुर के लिए भी एक सड़क थी जो पर्वतसर, अजमेर, पुष्कर, मेड़ता, नवकोट, छम्पा वाग होती हुई आती थी। सामान्यतः मारवाड़ में सड़कों का तात्पर्य कच्चे रास्ते से था न कि आधुनिक सड़कों से।[4]

राजाओं और सामन्तों द्वारा तेज घोड़ों का उपयोग किया जाता था, चाहे वे शिकार पर जाते, चाहे वे किसी राज्य कार्य पर जाते अथवा मनोरंजन के लिए सैर करते।[5]

महाराजा और राजकुमार हाथी की सवारी करते थे जिस पर सोने की और लकड़ी की कुर्सी होती थी। इसे होदा कहते थे।[6]

यातायात का मुख्य साधन ऊंट था अथवा वैल की पीठ पर सामान लाद के एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जाता था।

रायका और मिर्धाओं को राजाओं के गुप्त पत्र लाने और ले जाने का काम दिया हुआ था और जव ये पत्र निश्चित स्थान पर पहुंचाते थे तो उन्हें उस काम के एवज में उचित इनाम दिया जाता था।[7] वैलगाड़ी, घोड़े,

---

1 वही जमा खर्च नं. 44, जोधपुर अभिलेखागार, वि. सं. 1729 से 1735 (1672 से 1678 ए. डी.)।

2 दस्तरी वही, आसोज के शुक्ल पक्ष का 13 वां दिन वि. सं. 1837 (1780 ए. डी.)।

3 अजितोदय, सर्ग 35

4 वही।

5 अजितोदय, एफ 21, सर्ग 32; हकीकत वही, वि. सं. 1820 (1763 ए. डी)।

6 हकीकत वही, वि. सं. 1856

7 सवाई जयसिंह का महाराजा अभयसिंह के नाम पत्र, आसोज के शुक्ल पक्ष का 12 वां दिन वि. सं. 1790 (1733 ए. डी.), पोर्ट फोलियो फाईल नं. 9 (1766 ए. डी.)।

काम चलाते थे। खेती बहुत कम करते थे। पुष्करणा ब्राह्मण नौकरी अधिक पसन्द करते थे। बहुत से व्यापार भी करते थे और उसके लिए दूर दूर परदेशों में भी चले जाते थे। जो लोग गांवों में रहते थे वे खेती भी करते थे। भीख बहुत कम लोग मांगते थे। यजमानों की बिरत भी इनमें बहुत कम होती थी। कथा पढ़ने पढ़ाने आदि का रिवाज भी इनमें नहीं था। जोधपुर में चन्डवाणी, जोशी, चन्डू पंचांग बनाते थे जो सम्पूर्ण मारवाड़, जैसलमेर, बीकानेर में चलता था। सिरमालियों का भी पेशा पूजा पाठ, विवाह और क्रिया कर्म कराने का था। अनपढ़ मांगते थे या खेती करते थे। सिपाहीगिरी कभी नहीं करते थे। पैसा जोड़ने के लिए खाने, पहिनने में विशेष किफायत रखते थे। जमीन और जेवर के गहनों पर (जिसमें असल रकम का नुकसान न हो सके) व्याज पर रुपया उधार देते थे।

2 **माली**—मालियों का अपना पेशा तो बागवानी और खेती करने का था परन्तु कुछ लोग खान खोदने, पत्थर घड़ने, मकान बनाने का कार्य भी करने लगे थे।

3 **क्यामखानी**—क्यामखानी खेती, सिपाहिगिरी, मजदूरी आदि का काम करते थे। ठगी, डकैती में भी इनका नाम सम्मिलित था।

4 **चारण**—चारणों का मुख्य पेशा राजपूत राजाओं और सरदारों की दरबारदारी करना था। कुछ लोग खेती भी करते थे और नौकरी भी। ऐसे भी चारण थे जो व्यापार भी करते थे क्योंकि मारवाड़ में इनके माल पर महसूल नहीं लगता था।

5 **ढोली**—ढोली ढोल, सारंगी और नगारे बजाकर अपने यजमानों के घर जाते थे। जोधपुर के ढोली नोबत बजाने में बहुत होशियार थे और इस बात का दावा रखते थे कि इनके बराबर शहनाई भी कोई नहीं बजा सकता।

6 **महाजन**—ओसवालों का आम पेशा व्यापार था। कुछ लोग राज की नौकरी भी करते थे। व्यापार के लिये देश से दूर-दूर चले जाते थे। गांवों के ओसवाल खेती भी करते थे। एक गांव से दूसरे गांव नमक, तेल, मिर्च मसाला बेचने के लिये ले जाते थे। उनकी व्यापारिक क्रियायें सामान खरीदना, बेचना, उधार लेना और देना और ठेके के कार्य करना था।[1]

पोरवाल महाजनी का धन्धा करते थे और अधिकतर पोरवाल किसानों को साख पर अनाज खाने को देते थे और स्वयं भी खेती करते थे।

7 **तुरकिया बोहरे**—ये दुकानदारी करते थे और व्याज पर रुपया भी उधार देते थे।

---

1 अजितोदय, दोहा 201

8 लखेरा—चूड़ियों का निर्माण और लाख का व्यापार करते थे।

9 ठठेरा—ये ताँबा, पीतल, काँसी इत्यादि के कलाकार और व्यवसायी होते थे।

10 पिंजारा—रुई धुनने का व्यवसाय करते थे।

11 कलाल—ये शराब का व्यवसाय करते थे।

12 दोसी—[illegible] का विक्रय करते थे।

13 तेली—तिलों से तेल निकालने का और तेल बेचने का व्यवसाय करते थे।

14 मोची—चमड़े को निकालना, रंगना और उनसे वस्तुओं का निर्माण कर उन्हें बेचने का धन्धा करते थे।

15 धोबी—ये कपड़े धोने का व्यवसाय करते थे।

16 तम्बोली—पान एवं सुपारी का विक्रय करते थे।[1]

17 सिलावट—पत्थरों की वस्तुओं का निर्माण कर उनका विक्रय करते थे।

18 बेलदार—खुदाई का कार्य करते थे।

19 जुलाहे—कपड़े बुनने का काम करते थे।

20 नाई—बाल काटने का काम करते थे।

21 गोला या चाकर—इनका पेशा अपने मालिकों की सेवा करने का था। औरत दासी औरतों की सेवा करती थी और मर्द गोला मर्दों की। जो औरतें राजाओं और सरदारों के लड़कों को दूध पिलाती थी वे धाय माँ और उनके बेटे धाभाई कहलाते थे। इन स्त्रियों का दर्जा अन्य गोलों और चाकरों से ऊँचा होता था।

राजस्व व्यवस्था की समीक्षा

राजस्व ही राज्य की आमदनी का मुख्य साधन था। इसकी वसूली कई प्रकार से होती थी। जागीरदारों से 'रेख' के रूप में और खालसा गाँवों से जमीन की उपज के अनुसार सीधी लगान वसूली या 'हवाला' के रूप में वसूल किया जाता था।

1 जागीरदारों के गाँवों से 'रेख' के निश्चित रुपयों के अतिरिक्त 'जब्ती' के समय विशेष कर वसूल किया जाता था। यह जब्ती जागीरदारों की मृत्यु होने पर अथवा शासक की नाराजगी के कारण होती थी।[2]

2 खालसा के गाँवों में प्रत्येक परगने में खरीफ और रबी की फसल की

---

1 राजस्थान की जातियाँ, बजरंग लाल लोहिया, पृ. 173-237

2 मारवाड़ रा परगनां री विगत, मुहता नैणसी, भाग 2, पृ. 91

पैदावार से अलग अलग अनुपात में फसल का हिस्सा लिया जाता था। इसके अतिरिक्त अफीम, सब्जी, कपास, कडबी, फलों आदि पर रोकड़ कर लिया जाता था। कुछ लोगों से खेत की उपज का हिस्सा न लेकर रोकड़ रुपया लिया जाता था।[1] हासिल के अतिरिक्त किसान द्वारा 'मलवा' दिया जाता था। मलवा फसलों की देखरेख करने वाले व्यक्तियों को दिया जाता था। सामान्यतः यह सरकारी भाग के प्रति दस मन अनाज पर दो रुपये की दर पर लगता था।[2]

3 जानवरों की चराई पर भी कर वसूल किया जाता था। गायों, भैंसों आदि पर लगने वाला कर 'घास मारी' कहलाता था तथा ऊंट, बकरी पर लगने वाला कर 'पान चराई' के नाम से पुकारा जाता था। यह कर पशुओं की गणना के अनुसार रोकड़ में लिया जाता था।[3] कृषक जो अपने मवेशियों के लिए वाड़े रखते थे उनको 'वाड़ादण्ड' चुकाना पड़ता था। इसके दूसरे नाम 'किवाड़ी' या 'घरबाव' भी थे।[4]

खलिहानों पर अनेक प्रकार के छोटे बड़े कर लिये जाते थे जिनमें गूघरी (उपज का एक निश्चित भाग) कागज खर्च, कणवारिये की रकम (वे चोकीदार जो अनाज के ढ़ेरों की निगरानी करते थे) आदि मुख्य थे। इन करों की घटा-वढी भी होती रहती थी। कभी कभी कुछ कर माफ भी कर दिये जाते थे।[5] परगनों के अनुसार करों की संख्या व अनुपात में भिन्नता भी थी।

जनता से 'घ्माला' व खीचड़े का कर भी लिया जाता था। घुमाला का कर गांव की आवादी से प्रति घर हैसियत के अनुसार चौधरी लोग शामिल करके राज्य कर्मचारी को देते थे। खीचड़े की रकम फौज आदि के खर्च के लिये ली जाती थी। यह रकम अधिक नहीं होती थी। पूरे मेड़ते परगने की खीचड़े की रकम 600) या 700) रुपये वसूल होती थी।[6]

जमीन और खेती सम्बन्धी इन करों के अतिरिक्त व्यापारियों से भी कर लिया जाता था। यदि व्यापारी राज्य के अन्दर से ही कपास, अनाज, तिल, घी आदि वस्तुएं व्यापार के लिए लाते थे तो एक मन पर एक सेर कर वसूल किया जाता था। परदेश के व्यापारी कपड़ा, रेशम, हाथी-दांत, कस्तूरी,

---

1 मारवाड़ रा परगनां री विगत, मुहता नैणसी, भाग 2, पृ. 89
2 हथ बही नं. 4, पृ. 94-97
3 मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, पृ. 88
4 बही जमा खर्च, वि. सं. 1815
5 मारवाड़ रा परगनां री विगत, मुहता नैणसी, भाग 2, पृ. 92-93
6 वही, पृ. 98

कपूर, मोती आदि लाते थे, उन पर रोकड़ कर दुगानी के सिक्कों में लिया जाता था। महाजनों से प्रतिघर 16 दुगानी कर लिया जाता था। होली-दीपावली 12 दुगानी तथा रक्षाबन्धन पर 5 दुगानी लेते थे। घोड़ों आदि के व्यापारियों से भी कर लिया जाता था। मेलों से भी आमदनी होती थी। प्रत्येक परगने की पैदावार तथा आर्थिक व भौगोलिक स्थिति के आधार पर कर की इन दरों के अनुपात में भिन्नता थी। 'खाली चीठी' उन वस्तुओं पर लगती थी जिसको चूंगी कर नहीं देना पड़ता था। वस्तुओं के तोल पर 'मापा' लगता था।

4 मुगल काल में जो मनसब दन की प्रथा थी उसके अनुसार यहां के शासकों को भारत के विभिन्न सूबों की सूबेदारी मिलती थी। महाराजा अभयसिंह को गुजरात की सूबेदारी मुगल बादशाह से मिली थी। मारवाड़ के नरेश को उस सूबे की एक निश्चित रकम प्रतिवर्ष बादशाह के खजाने में जमा करवानी होती थी।[1] कभी-कभी युद्ध आदि विशेष अवसरों पर बादशाह की ओर से फौज खर्च के लिए भी रकम मिलती थी। युद्ध में अच्छा काम देने पर रोकड़ रकम के रूप में इनाम, जड़ाऊ आभूषण व शस्त्र, हाथी तथा घोड़े आदि भी दिये जाते थे। अतः यह भी आमदनी का एक साधन था। ऐसे अवसरों पर अधिक इनाम तथा विशेष राजकीय सम्मान पाने के लिये शासकों में प्रतिस्पर्धा रहती थी।

सिक्का मुद्रा

उस समय में व्यवहार में आने वाले सिक्कों में रुपया, दाम, पीरोजी, दुगानी, फदिया, टंका आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। रुपये का प्रयोग शाही खजाने के साथ लेने देने में होता था। दाम[2] तांबे का तथा रुपया चांदी का सिक्का होता था। व्यापार में भी प्रायः इन दोनों सिक्कों का प्रचलन अधिक होता था। स्वर्ण मुद्राओं में मोहरों का भी नाम प्राप्त होता है।

अकाल

अपने राज्य में पुराने कर बढाने घटाने का अकाल के समय अधिकार नरेश को प्राप्त होता था परन्तु मुगल सम्राट भी इसमें दखल दे सकता था। 1732 ए. डी. और 1742 ए. डी. के अकाल बहुत भयानक अकाल थे जिनका

---

1 इस रकम में कभी-कभी वृद्धि भी कर दी जाती थी जिसे इजाफा कहा जाता था।

2 40 दाम का एक रुपया माना जाता था (आइने-अकबरी, पृ. 41, अनु. हरिवंश राय) दाम को पहिले बहलोल व पैसा भी कहते थे।

पूरा प्रभाव सोजत, रायपुर और जैतारण पर पड़ा था।[1] 1747 का अकाल राजस्थान में सब जगह फैल गया था। सर जदुनाथ सरकार के अनुसार पाली के स्रोत सब सूख गये थे और कहीं भी एक हरा पत्ता नहीं दिखाई देता था। महीनों सूखा पड़ा रहा और एक भी बूंद पानी की नहीं गिरी। जानवर चारे के बिना, मानव खाद्यान्न के बिना मर रहे थे। अकाल पड़ने पर करों में विशेष रियायत दी जाती थी। जमीन का लगान नाम मात्र का लिया जाता था, जिसे "पाताल भोग" कहते थे।[2] बहुदा यहां के ग्रामीण लोग अकाल के समय अपने मवेशियों सहित मालवे की ओर चले जाते थे।[3]

निष्कर्ष

अभयसिंह के समय में आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण भाग कृषि था, यद्यपि कुटीर उद्योगों व व्यापारिक क्रियाओं से अर्थ व्यवस्था काफी प्रभावित रही थी।

भू-पद्धति का वर्गीकरण खालसा के रूप में था। बापीदार और गैर-बापीदार काश्तकार होते थे। गैर खालसा भूमि विभिन्न भू-पद्धतियों के अन्तर्गत होती थी।

भूमिकर से आय राज्य की आवश्यकताओं की तुलना में कम पड़ती थी इसलिए महाराजा द्वारा अन्य कर लगाए जाते थे जिनका कृषि और गैर-कृषि जनता द्वारा भुगतान करना होता था। इस प्रकार के करों को लाग या लागती रकम के नाम से पुकारा जाता था। अभयसिंह ने भी इस लाग को जारी रखा और इस प्रकार एक ऐच्छिक कर स्थायी कर बन गया था। शुल्क भी एक महत्वपूर्ण आय का साधन था।

जागीरदार अपनी प्रजा पर भी कई प्रकार के लाग लगाते थे।

इसके अतिरिक्त अन्य आय के साधन थे—सायर, दरीबास, टकसाल, रेख, हुक्मनामा, तलवाना, नजर इत्यादि।

दरबार के व्यय के मद भी अत्यधिक व्यय-साध्य थे जैसे दरबार का स्वयं का व्यय, महल का व्यय, रानियों व जनानी ड्योढी पर व्यय, विभिन्न प्रकार के कर्मचारियों पर व्यय, लड़ाइयों पर व्यय, अकाल राहत व्यय इत्यादि जिसका परिणाम यह रहता था कि अभयसिंह के मारवाड़ की राजस्व व्यवस्था बड़ी कमजोर रही थी और इसी कारण महाराजा द्वारा सरदारों एवं अन्य लोगों से ओहदों के एवज में बड़ी-बड़ी रकमें वसूल करनी पड़ी थीं।

---

1 महाराजा अभयसिंह का पत्र अमरसिंह भण्डारी के नाम भाद्रपद का कृष्ण पक्ष का पहला दिन वि. सं. 1789 (21 जुलाई 1732 ए. डी.)।
2 सर जदुनाथ सरकार : फाल ऑफ मुगल एम्पायर, भाग 1, पृ. 159
3 हकीकत बही, वि. सं. 1820-1840, पृ. 29

अध्याय 8

उपसंहार

परिचय

महाराजा अभयसिंह के समय की विविध\विषमताओं के अध्ययन के लिए निम्नलिखित स्रोत महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य स्रोत

1 महाराजा द्वारा लिखित पत्रादि। 2 चारण,भाटों आदि द्वारा लिखित ग्रन्थ, ख्यातें, प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें, संस्कृत काव्य आदि। 3 मुगलों के समय के लिखित फारसी ग्रंथ। 4 विदेशी विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें। 5 वर्तमान इतिहासकारों द्वारा लिखित ग्रन्थ जैसे हकीकत वही, ब्याह वही, दस्तरी रिकार्ड, जमा खर्च बही, मर्दु मशुमारी रिपोर्ट इत्यादि।

1 **महाराजा द्वारा लिखित पत्रादि**—महाराजा अभयसिंह एवं उसके पूर्व मारवाड़ के इतिहास को प्रकाशित करने के ये मुख्य विश्वसनीय स्रोत हैं। महाराजा के पत्र व्यवहार विशेषतः अभयकरण एवं अपने प्रधान को लिखित पत्र जिनका विवरण यथा प्रसंग आया है, विशेष महत्व के हैं।

2 **ख्यातें, हस्तलिखित पुस्तकें एवं संस्कृत के काव्य**—प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ख्यातें निम्नलिखित हैं—

मुहणोत नैणसी की ख्यात जो अब दो भागों में पुरातत्व विभाग, जोधपुर द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है।

अभयसिंह की ख्यात जो राज्य अभिलेखागार बीकानेर में हस्तलिखित उपलब्ध है।

3 **जोधपुर की ख्यात**—महाराजा जसवन्तसिंह के मंत्री मुहणोत नैणसी द्वारा उसके काल में लिखित यह ख्यात प्राचीनतम है।

अभयसिंह की ख्यात में अभयसिंह के जन्म से सिंहासन पर बैठने व उसके अहमदाबाद युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इस स्रोत को अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है।

जोधपुर राज्य की ख्यात महाराजा मानसिंह के काल में लिखित चार भागों में प्राप्त है। इसके प्रथम भाग में राव सीहा से महाराजा जसवन्तसिंह

तक के इतिहास का वर्णन निहित है। द्वितीय भाग का आरम्भ महाराजा अजीतसिंह के वृत्तान्त से होता है और महाराजा अभयसिंह का विवरण विस्तृत रूप से मिलता है जिससे मारवाड़ के उस समय के इतिहास को जानने में सुविधा रहती है। यह ख्यात नरेशों के दैनिक राजनैतिक विवरण को प्रकाश युक्त करती है। देवनागरी में लिपिबद्ध यह ख्यात अब तक केवल हस्तलिखित ही है।

मुन्दियार की ख्यात—इसका पूरा नाम ठिकाना मुन्दियार री राठोड़ां री ख्यात है। इसके द्वारा महाराजा अभयसिंह के समय का वर्णन और विशेष रूप से अहमदाबाद के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है।

वीर विनोद—महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास द्वारा लिखित यह सम्पूर्ण राजपूताने के इतिहास का विवरण प्रस्तुत करता है। वीरविनोद में ख्यातों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, फरमानों, फारसी तवारीखों के सम्मिलित होने से अन्य ख्यातों की अपेक्षा इसका अधिक महत्त्व है।

वंशभास्कर—वंशभास्कर का भाग चार मुख्यत: महाराजा अभयसिंह के जीवन से सम्बन्धित है।

अभयोदय—यह जगजीवन का बनाया 28 पृष्ठों का संस्कृत भाषा में लिखित ग्रन्थ महाराजा अभयसिंह के जीवन से सम्बन्धित है।

सूरजप्रकाश—कविया करणीदान (जो कविया शाखा का चारण था) ने सूरजप्रकाश डिंगल भाषा में लिखा था जो अब प्रकाशित (3 भागों में) हो चुका है। कविया करणीदान ने ही सूरजप्रकाश को 126 छन्दों में लिखकर उसका नाम 'विड़द शृंगार' रख दिया था। इन्हीं दोनों काव्यों के पुरस्कार में महाराजा अभयसिंह ने करणीदान को 2000 रु. वार्षिक आय की जागीर और लाख पसाव दिया था।

राजरूपक—यह ग्रन्थ रतनू शाखा के चारण वीरभाण के द्वारा रचित डिंगल भाषा में है। महाराजा अभयसिंह के सामने यह काव्य किन्हीं कारणों से पेश नहीं हो सका। संभवत: वीरभाण मारवाड़ छोड़कर चला गया था। अन्त में करीब 100 वर्ष बाद जब महाराजा मानसिंह ने उस काव्य को देखा तब उसने कवि के आभार से उऋण होने के लिए वीरभाण के वंशज का पता लगवा कर, उसके अशिक्षित होने पर भी उसे 500 रु. वार्षिक आय की जागीर दी।

अभयविलास—अभयसिंह के समय में सांदू शाखा के चारण कवि पृथ्वीराज ने 'अभयविलास' नामक भाषा काव्य लिखा था।

अभयगुणसार, अहमदाबाद युद्ध कवित्त—इनके द्वारा अहमदाबाद के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है।

मुगलकालीन फारसी ग्रन्थ

फारसी तवारीख में भी यथा प्रसंग मारवाड़ के इतिहास का विवरण निहित है। यद्यपि इनमें जातीय एवं धार्मिक पक्षपात की मात्रा दृष्टिगोचर होती है फिर भी समकालीन लेखकों की रचनाएं होने के कारण ये मारवाड़ के नरेशों के इतिहास के लिए विशेष महत्व की है। मीरात-ए-अहमदी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके द्वारा मारवाड़ के इतिहास का वर्णन प्राप्त होता है।

विदेशी विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकें

इन पुस्तकों ने भी मारवाड़ के इतिहास का वर्णन करने का प्रयत्न किया है। जेम्स टॉड आदि विदेशी इतिहासकारों ने राजपूताने के इतिहास का वृत्तान्त दिया है। उनका प्रयत्न सराहनीय था परन्तु जनश्रुति पर आधारित उनका परिश्रम हमें इतिहास के अन्तःस्थल तक ले जाने में असफल ही रहता है।

वर्तमान इतिहासकारों द्वारा ग्रन्थ

वर्तमान इतिहासकारों में श्री जे. एन. सरकार एवं कालिका रंजन कानूनगो की क्रमशः औरंगजेब एवं दाराशिकोह के बारे में अद्वितीय रचनायें हैं। इन अमूल्य कृतियों में भी यथा प्रसंग मारवाड़ का वर्णन हुआ है। डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ की मारवाड़ के इतिहास से सम्बन्धित रचनायें भी अमूल्य हैं।

अन्य ग्रन्थ

उस समय की जातियों और उनके रीति-रिवाजों का अनुमान मर्दुमशुमारी रिपोर्ट से लगता है। विवाह एवं अन्य संस्कारों का उल्लेख ब्याह बहियों में, धर्म और आर्थिक स्थिति का अनुमान हकीकत बहियों एवं मर्दुमशुमारी रिपोर्ट से लगता है। हकीकत बही और दस्तरी रिकार्ड्स् में अन्य फुटकर जानकारी होती है जिसका उपयोग इस ग्रन्थ में विभिन्न अध्यायों में किया गया है।

विभिन्न ग्रंथों का सापेक्षिक महत्व

प्रस्तुत रचना सभी साधनों का सार है फिर भी ख्यातों, सूरजप्रकाश और राजरूपक को मुख्य प्रधानता दी गई है। क्योंकि हमें अधिक सही और उस समय के विवरण से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होने से ये ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता है। अभयसिंह की ख्यात

उसी समय की रचना है। करणीदान व वीरभाण महाराजा अभयसिंह के साथ अहमदाबाद युद्ध में रहे थे। करणीदान तो शुरु से ही महाराजा अभय-सिंह का विश्वासपात्र सहयोगी था। कविराज करणीदान ने महाराजा अभयसिंह के आदेशानुसार अपने ग्रन्थ सूरजप्रकाश में बुलन्द खां के साथ युद्ध के वर्णन का ध्येय लेकर महाराजा के पूर्व पुरुषों का भी संक्षिप्त इतिहास दे दिया है और महाराजा के जीवन वृत्त सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन किया है जिसमें प्रथम घटना नागोर का युद्ध और दूसरी घटना महाराजा अभयसिंह का बुलन्द खां के साथ अहमदाबाद का युद्ध है।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि करणीदान ने सूरजप्रकाश में कुछ मात्रा में कवि कल्पना का प्रदर्शन किया है और कुछ बातों को बढ़ा चढ़ाकर कहा है परन्तु फिर भी उसने घटनाओं और स्थिति का सही वर्णन किया है। वह केवल कवि ही नहीं था बल्कि एक वीर सेनानी भी था और महाराजा के साथ युद्ध मैदान में भी रहा था। अतः सबसे अधिक सही और विश्वसनीय स्रोत हमने 'सूरजप्रकाश' को माना है।

विभिन्न स्रोतों में कई घटनाओं के विवरण में विभिन्नता है जिससे बहुदा उस तथ्य की वास्तविकता व समय के प्रति शंका पैदा हो जाती है परन्तु सही व विश्वसनीय स्रोतों के आधार पर इस प्रकार के भ्रमों का खण्डन किया जा सकता है।

इस समय का विवादग्रस्त प्रश्न

इस समय का विवादग्रस्त प्रश्न यह है कि महाराजा अजीतसिंह की हत्या में महाराजा अभयसिंह का क्या हाथ था ? क्य वह वास्तविक रूप में अपने पिता की हत्या का उत्तरदायी था ? इस विवादग्रस्त प्रश्न के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालना उचित होगा जिससे हम महाराजा अभयसिंह के व्यक्तित्व का अनुमान लगा सकें।

1 **बख्तसिंह द्वारा अजीतसिंह का वध**—महाराजा अजीतसिंह का वध स्वयं उसके द्वितीय पुत्र बख्तसिंह ने किया। सत्यता की यह भीषण प्रति-ध्वनि जब प्रवाहित हुई तो जन समूह स्तंभित रह गया। इस पाप कर्म के पीछे क्या रहस्य था, इस पर कुछ विचार किया जा सकता है।

उस समय युवराज अभयसिंह मारवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी था। महाराजा अजीतसिह के बाद उसका सिहासनासीन होना निर्विरोध अधिकार था। फिर बख्तसिंह ने अपने पिता का वध कर यह कलंक क्यों अंगीकार किया ? क्या उसे राज्य की अभिलाषा थी ? अथवा वह अन्य स्वार्थों की पूर्ति केवल साधन मात्र था ? संवत् 1781 आषाढ सुदि 13 (23 जून 1724) की भयंकर रात्रि को पिता का अभिवादन कर बख्तसिंह अपने शयन

कक्ष में, जो पास ही था; चला गया। अर्धरात्रि को वह अपने पिता के कक्ष में प्रविष्ट हुआ और अपने पिता को अपने ही हाथों से समाप्त कर दिया।[1]

इस वध की अनुभूति सर्व प्रथम उसकी पत्नी ने अपने वक्ष पर रक्त की तरलता द्वारा की। समस्त शयनागार शोकाकुल हो उठा। वधकर्त्ता कौन था ? यह रहस्य न तो गुप्त रह सकता था और न गुप्त रह ही सका। कुकर्म की कालिमा को छिपाने एवं जनता की उग्रता से बचने के उद्देश्य से रात्रि की कालिमा में ही बख्तसिंह महल से भाग गया।

2 **कामवरखां का अजीतसिंह पर आरोप**—अपनी पत्नी पर महाराजा अजीतसिंह के आसक्त हो जाने से रुष्ट होकर बख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या की। मुहम्मद हारी कामवरखां की "तजईकराए सला तीरा चगतई" के आधार पर इर्विन का यह कथन पक्षपात का प्रतीक है। पुत्र द्वारा पिता का वध मुगल इतिहासकारों के लिए विनोद का विषय था। पुत्र वधू पर बुरी नजर रखने का यह आरोप प्रमाणों के अभाव में निर्मूल प्रतीत होता है।

फरुखसियर के वधोपरान्त राजधानी में महाराजा अजीतसिंह की कुख्याति दामाद कुश के घृणित सम्बोधनों द्वारा प्रसारित हो चुकी थी। नवीन शहंशाह मुहम्मद शाह की दृष्टि में अजीत भी उतना ही तिरस्कृत था, जितना कि सैय्यद बन्धु। इसके पतन के पश्चात् सम्राट् की कुदृष्टि का पात्र महाराजा अजीतसिंह बना। सम्राट् की इस दुराकांक्षाओं को आवरित करते हुए कामवरखां ने जो आरोप लगाया है वह प्रमाण रहित है। इस वध के पीछे सम्राट् की प्रतिशोध की भावनाएं छिपी थीं, उन्हें निम्न प्रमाणों से प्रकाशयुक्त करने का प्रयास किया है।

3 **आरोपों का खंडन**—सम्राट् ने अपने गुप्त प्रवचनों की सिद्धि के लिए जयपुर नरेश सवाई जयसिंह और जोधपुर के भंडारी रघुनाथ को चुना—जो उस समय अजीतसिंह के अपरोक्ष विरोधी थे—साथ ही शाही नीति के समर्थक भी। युवराज अभयसिंह को भी, जो उस समय शाही दरबार में था, प्रलोभनों एवं भय द्वारा बाध्य किया गया।[2] रेऊ के अनुसार त्रिगुटीय भय एवं प्रलोभनों से भी जब अभयसिंह प्रभावित न हुआ तब उत्पीड़ित हो जयसिंह एवं भंडारी रघुनाथ ने एक जाली पत्र पर अभयसिंह के किसी प्रकार हस्ताक्षर करवा लिए एवं उसे बख्तसिंह के पास भेज दिया। बख्तसिंह ने देश

---

1 अजीतसिंह री वारता—पत्र 491
लेटर मुगल्स—इर्विन, भाग 2, पृ. 114-117

2 माधुरी (मार्च 1928, मू.प.स. 68) और इण्डियन एण्टीक्वेरी (मार्च 1929, भाग 58) में प्रकाशित—विलियम इर्विन और महाराजा अजीतसिंह—वि. ना. रेऊ।

एवं भ्राता पर आने वाले संकट की कल्पना कर पिता का वध कर दिया।[1]

जिस प्रकार अभयसिंह को निर्दोष करने का प्रयत्न किया है वह केवल अतिशयोक्ति है। सच तो यह है कि पिता के वध में अभयसिंह का भी पूर्ण समर्थन था। बख्तसिंह को अपना आदेश उसने केवल किसी दबाव के कारण नहीं दिया था। वह स्वयं पिता के वध के पक्ष में था। साथ ही बख्तसिंह का भी स्वार्थ इसमें निहित था। राजाधिराज की उपाधि एवं नागोर प्रान्त प्राप्त होने का शाही आश्वासन उसे प्राप्त हुआ था। शाह नवाज खां (सम्सायुद्दोला) की मआसिरित-उमरा और मुहम्मद शफी वारिद (यी राते आरिदात) भी इसी सत्य की साक्षी हैं। इनके अनुसार महाराजा अजीतसिंह की हत्या का मुख्य निर्देशक गुप्त रूप से सम्राट् था।[2] जोधपुर की ख्यात भी इसी सत्य[3] की पुष्टि करती है कि महाराजा के वध के उत्तरदायी सम्राट्, जयसिंह एवं भंडारी रघुनाथ ही थे। महाराजा अजीतसिंह के वध के पश्चात् मारवाड़ में विप्लव, असंतोष एवं गृह कलह आरम्भ हो गई। छोटे कुंवर किशोरसिंह एवं रायसिंह वधकर्ताओं के विरोधी हो गये।

वि. सं. 1782 (ई.स. 1725 ई.) में जब अभयसिंह सिंहासनारूढ होने के पश्चात् जयसिंह की कन्या से विवाह करने मथुरा जाने लगा तब सरदारों ने इसे मार्ग ही में रोक लिया और उसने पहिले यह आग्रह किया कि वह

---

1 मारवाड़ का इतिहास—वि. ना. रेऊ, भाग 1, पृ. 327

2 इण्डियन एण्टीक्वेरी (मार्च 1929, भाग 58), माधुरी 68, मुहम्मद शफी वारिद ने अपनी पुस्तक में 1717 ई. से 1739 ई. तक का प्रत्यक्ष विवरण किया है। 1724 ई. में होने वाला महाराजा अजीतसिंह का वध भी इसी मध्य हुआ था।

3 जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 2, पृ. 115

दिल्ली में रहते हुए अभयसिंह ने महाराजा अजीत के विरोधी जयसिंह एवं सम्राट् से निकटता स्थापित कर ली थी। महाराजा ने इस घनिष्टता से शंकित हो पुरोहित जग्गू तथा रोहट के ठाकुर चांपावत सगतसिंह को दिल्ली से कुंवर को लौटा लाने के लिए भेजा। दिल्ली में सम्राट् के परामर्शानुसार जयसिंह ने अभयसिंह को समझाया कि सैय्यद बन्धुओं के वध के उपरान्त सम्राट् अब अजीत के वध का अवसर खोज रहा है—इससे हजारों राठौड़ों के प्राण जायेंगे। अतएव यदि अभयसिंह दिल्ली में निवास करता हुआ ही अजीतसिंह का वध करवा दे तो सम्राट् प्रसन्न हो जायगा, तब बख्तसिंह को सूचित किया गया। अपने भ्राता के आदेशानुसार श्रावणादि संवत् 1780 (चैत्रादि 1781) आषाढ सुदि 13, 23 जून 1924 को सुप्त अजीतसिंह का वध कर दिया।

पहिले जोधपुर चलें परन्तु उनका यह प्रयत्न सफल न हुआ। महाराजा द्वारा लिखा पत्र इस सत्य का साक्षी है।[1] प्रतिशोध की वेदना से परिलिप्त मृतक महाराजा के स्वामी भक्त राठोड़ व्याकुल हो रहे थे। भंडारी रघुनाथ का अस्तित्व उन्हें असहनीय हो गया था। जनता के इस प्रत्यक्ष विरोध से प्रभावित होकर अभयसिंह ने मथुरा में ही प्रधान को बन्दी बनाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप भंडारी विद्रोही हो गया। इनका स्थान पंचोली रामकिशन को दिया गया।

वि. सं. 1782 कार्तिक सुदि 4 (29 अक्टूबर 1725) को जयपुर नरेश जयसिंह के महाराजा अभयसिंह के नाम लिखे पत्र में महाराजा को सम्राट् की आज्ञा द्वारा शीघ्र ही अहमदाबाद जाने का आग्रह करने के उपरांत लिखा है—

> अर राज खरची वा जागीर के वासते लिखी छी तीं री
> अरज कराई छै सो ठीक पाड़ि पाठ सौं लिखां ला—[2]

(अर्थात् आपने खर्ची (रुपये) तथा जागीर के लिए लिखा था सो उसकी अर्ज तो कर दी गई है, पता लगाकर फिर पत्र द्वारा सूचना दूंगा।)

---

1 इण्डियन एण्टीक्वेरी, मार्च 1929, भाग 58; माधुरी 1928, पूर्ण सं. 68।
स्वारूप श्री श्री राज राजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अभैसिंह जी देव वचनात रा. अभैकरण दुर्गादासोत दीसे सुप्रसाद वाच जो तथा हूजूर सु की तरेफ आसामी वीनां मुजरो की मां उठ आया छै सो कदास था नेई जुठ साच कहै तो कीणीरा कहा 3 प्रा नीजर मत राखजो। ये सदा दरवार रा सामचर भी छो—सारी वात रो जावतो करने—प्रवांनो देखत सवां हुजूर आवजो हुक्म छै सं. 1781 रा भा. सु. 10, मु. जहानावाद।

2 इण्डियन एण्टिक्वेरी, मार्च 1929, भाग 58, 11 नवम्बर 1725।
अर कागद भंडारी राय रघुनाथ रो वुधराम प्रोहत ले आयो तो में लिख्यो जो मुताविक पातसाही दरवार सौ कराय लीज्यौ—सो या कागद वजनिसि म्हाने वंचायौ अर पतिसाहजी ने सरवुलन्दखां अर गुरज वरदारां अरज लिखी जो महाराज कुचन कियो तो परि वहोत वेजार हाय रह्या है। जो अरज मतालिव वा खरची की कीजै त्याको जवाव ही वे नहीं सो राज्य ने लिखां छां पहुंचता कागद के कुच ने सिताव करोला अर मण्डल दोय च्यार जावौ तव गुर—जवरयांरा कनै अरज पातिसाहजी ने लिखाय छोल ज्यों मतालिव राज्य का सरजाम होय पातिसाहजी ने वेजार करवौ सलाह नहीं।

सवाई जयसिंह के अभयसिंह को लिखित 11 नवम्बर 1725 के पत्र द्वारा ज्ञात होता है कि महाराजा अजीतसिंह एवं जयसिंह के सम्बन्ध स्नेहयुक्त थे। अतएव अजीतसिंह के वध के षड़यंत्र में इन दोनों के सम्मिलित प्रयास की अनुभूति होती है। 17 सितम्बर 1727 में बख्तसिंह को लिखे हुए पत्र से ज्ञात होता है कि सम्राट् की इच्छानुसार कार्य हो जाने पर अवश्य ही उसे पुरस्कृत करने का आश्वासन दिया गया[1] परन्तु इसमें विलम्ब होते देख जयसिंह और रघुनाथ सम्राट् पर दबाव डालने लगे।। बख्तसिंह के पत्र द्वारा भी यह ज्ञात होता है कि अभयसिंह को भी अहमदाबाद का सूबा दिये जाने के सम्बन्ध में परामर्श हो रहा था।[2]

उक्त तथ्यों के आधार पर कामवरखां के कथन का खण्डन होता है। साथ ही प्रामाणिकता ठोस हो जाती है कि अजीत के वध का अपरोक्ष निर्देशक सम्राट् ही था। जयसिंह एवं रघुनाथ इसके सक्रिय सहयोगी थे जिन्होंने अभयसिंह को उत्साहित किया, जिसके कहने में आकर व अपने भी स्वार्थों के लिए बख्तसिंह ने महाराजा अजीतसिंह की हत्या की।[3]

---

1 इण्डियन एण्टिक्वेरी, मार्च 1929, भाग 58।

अर म. अनोपसिंह एहमदाबाद रे सोणे दिसा मालम कीयो। सुबै लैणरो दरबार में तलास छै सुत श्री हजूर मे अरज करे आजकाल सौबेरी उबावात न छै दीखणीयां रीपिण जो रो छै नै—भरती में को लीयारों—फीसाद—निष्ट ज्यादा छै नवाब सीर विलंदखां उतरी जमीयत सु गयो थो जिणरो पिण अमल न हुवो तो श्री बामाजी पधारसी तरै जमीयत देसरीज हुसी सु हिमार सी अै में लोव नजर आवे न छै ने सोबों लीजे नै अमल न हुवै—तो न जाणी जै। और ते लिखियो थी—जागीरी रो सारो कांम ठीक हुवो छै—पिण लाख रुपिया खरचणै चाही जै जिणरी ढील छै—सु तु अरज करे दस दिनांरी जेज हुई तो लाख जाती रहसी नै निदांन पछै ही ठकै दियां विनां काम निकलसी नहीं तिणसु कदास रुपीया री नीसांबी जुन हुवै तों परगना साहुकारा गै आदी वालै मेल नै ही सरमरा करण री हुक्म हुवै पिण परगण री सनवा लेण री जेज न हुवै।

2 मआसिरुल-उमरा, भाग 3, पृ. 756

3 'वंशभास्कर' से भी पाया जाता है कि अभयसिंह ने अपने पिता अजीतसिंह को मारने के एवज में अपने भाई बख्तसिंह को आधा राज्य और नागोर देने का वायदा किया था (चतुर्थ भाग, पृ. 3083, छन्द संख्या 1-5)।

पालन नहीं किया और जोधपुर पर चढ़ाई कर दी क्योंकि उसे भय था कि महाराजा अभयसिंह (अहदनामे का दूसरा हस्ताक्षरकर्त्ता) बीकानेर पर अधिकार कर लेगा तो उसकी शक्ति मे विस्तार हो जायेगा। अभयसिंह ने जयसिंह को इस अहदनामे की याद नहीं दिलाई और शायद जयसिंह शक्ति का इतना भूखा था कि उसने दामाद और ससुर का रिश्ता तथा अहदनामे की शर्तो को भी भुला दिया।

महाराजा अभयसिंह का सरदारों से सम्बन्ध

आरम्भ से ही महाराजा अभयसिंह ने अपने सरदारों के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जिससे समय-समय पर सरदारों के साथ उसका विरोध रहा। उदाहरणार्थ जब जयपुर नरेश जयसिंह की पुत्री के साथ विवाह सम्बन्ध का निमन्त्रण अभयसिंह को दिल्ली में मिला तो सरदारों ने कहा कि पहिले महाराजा जोधपुर चलें और फिर आमेर जाकर विवाह करें। परन्तु महाराजा अभयसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया और मथुरा जाकर पहिले आमेर नरेश की पुत्री से विवाह किया। इससे अप्रसन्न होकर चैनकरण दुर्गादासोत (समदड़ी) उदयसिंह, हरनाथसिंहोत (खींवसर) तथा अन्य कितने ही चंपावत, कूंपावत, जैतावत, करणोत, मेड़तिया, जोधा, करमसोत तथा उदावत सरदार महाराजा अभयसिह का साथ छोड़कर चले गये।

अपने सरदारों को खुश रखने के लिए महाराजा अभयसिंह ने एक बार भंडारियों को कैद करवा दिया परन्तु यह कार्य केवल दिखावे के लिए और ऊपरी दिल से किया गया था। अतः उसका स्थायी परिणाम नहीं निकला।

धन का अभाव

महाराजा अभयसिंह के समय में राज्य में धन का अभाव ही बना रहा क्योंकि राज्य के बहुत से व्यय के मद होते थे जिन पर आवश्यकता से अधिक खर्च किया जाता था। महाराजा का दरबार, जुलूस एवं त्यौहारों पर अत्यधिक खर्च होता था। महल व अन्तःपुर का खर्च, महारानियों, पासवानों, वैध व अवैध सन्तान पर व्यय इत्यादि उल्लेखनीय था। अतः महाराजा अभयसिंह अपने सरदारों और दूसरे लोगों पर दबाव डालकर अथवा ओहदों की एवज में बड़ी बड़ी रकमें वसूल किया करता था।[1] मुगल बादशाह मुहम्मद शाह द्वारा गुजरात का सूबा मिलने पर महाराजा अभयसिंह ने रुपयों की वसूली के लिए गुजरात के निवासियों पर भांति भांति के जुल्म किये थे। उसने बड़े बड़े धनी सेठों और व्यापारियों को पकड़ कर कैद करवा दिया

---

1 ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 673

अभयसिंह ने मल्हार राव होल्कर से बख्तसिंह के विरुद्ध सहायता मांगी थी और वह होल्कर को 11 हजार रुपये प्रतिदिन के देने के लिए तैयार था।[1] इस प्रकार महाराजा अभयसिंह और रामसिंह के कारण मारवाड़ में मरहटों का हस्तक्षेप आरम्भ हो गया।

सामन्तों का महत्व

इस काल में सामन्त अपने अधिकारों को स्थापित करना चाहते थे जिनमें उत्तराधिकार के चयन में निर्णायक भाग लेना महत्वपूर्ण था। क्योंकि सिंहासन के लिये कई उम्मीदवार रहते थे और वे सामन्तों का समर्थन प्राप्त करने के इच्छुक रहते थे। महाराजा अभयसिंह के समय में सामन्तों को अपेक्षाकृत अधिक भूमिका निभाने का अवसर मिला। उदाहरणार्थ जोधपुर के कुम्पावत, उदावत सरदारों ने महाराजा अभयसिंह के विरुद्ध उसके छोटे भाइयों आनन्दसिंह और रायसिंह का पक्ष लेकर महाराजा अभयसिंह के लिए भारी संकट पैदा कर दिया था।[2] इसके अतिरिक्त मुगलों की केन्द्रीय शक्ति के पतन के पश्चात् राजपूत शासक महत्वाकांक्षी हो गये। महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण किया और जयपुर के सवाई जयसिंह ने एक तरफ तो जोधपुर पर आक्रमण किया और दूसरी ओर बूंदी राज्य पर भी अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया।[3] केन्द्रीय सत्ता के सहयोग के अभाव में महाराजा अभयसिंह को पुनः अपने सामन्तों की सहायता व सहयोग पर निर्भर करना पड़ा। ऐसी स्थिति में महाराजा अभयसिंह और सामन्तों के आपसी सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ।

सामन्तों के आन्तरिक दवाव से मुक्त होने तथा आपसी संघर्षो को सफलतापूर्वक हल करने और अपनी निरंकुशता एवं अपने अधिकारों को दृढ़ बनाये रखने के लिये महाराजा अभयसिंह ने मरहटों का सैनिक सहयोग क्रय किया था। लेकिन यही कार्य उसके विपक्षियों ने भी किया क्योंकि विरोधी मरहटा सरदार उपलब्ध थे और मरहटों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन वसूल करना था। महाराजा अभयसिंह मरहटों के द्वारा तत्कालीन लाभ प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए अपनी इस नीति के दूरगामी परिणामों पर ध्यान नहीं दे सका। संभवतः मरहटों के समर्थन से वह अपने राज्य में निरंकुश

---

1 मारवाड़ की ख्यात, भाग 2, पृ. 107

2 वही, खण्ड 2, पृ. 131; रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, खण्ड 1, पृ. 334; श्यामलदास कृत वीर विनोद, पृ. 844

3 मारवाड़ की ख्यात, खण्ड 2, पृ. 130; वंशभास्कर, खण्ड 4, पृ. 30126-27

भी मंगल कार्य में जैसे बाजारों की सजावट एवं नगर को सुन्दरतम एवं मनोरम ढंग से सजाने में व्यापारी वर्ग अपना उत्साहपूर्ण योग देता था।[1] युद्ध विजय के अवसर पर राजाओं के अन्य स्वागत समारोह के अवसर पर व्यापारी वर्ग सहस्रों दीपक जलाकर अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करता था।[2] वैश्यों में अनेकों व्यक्ति राज्य शासन के उच्च स्थानों पर प्रतिष्ठित थे। अमरसिंह भण्डारी महाराजा अभयसिंह का मुगल सम्राट् के दरबार में विशेष प्रतिनिधि था।[3] भण्डारी विजयपाल राठोड़ सेना के एक भाग का सेनापति था।[4]

पेशेवर जातियां अपनी सामाजिक स्थिति को आगे बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील थीं। प्रत्येक जाति का अपना सोपानात्मक ढांचा था, जिसमें उसकी विविध शाखाएं, अपने स्थान को सुरक्षित रखने के लिए, खान-पान तथा शादी-विवाह के रीति-रिवाजों का परम्परागत रूप से पालन करती थीं, उदाहरणार्थ श्रीमाली ब्राह्मण अपनी अग्रता को सुरक्षित रखने के लिये अपनी ही शाखा के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य किसी शाखा के ब्राह्मणों के हाथ का बनाया हुआ भोजन भी स्वीकार नहीं करते थे। पर्दा प्रथा का पालन करने वाले और 'नाता' (विधवा विवाह) न करने वाले राजपूतों को उच्च श्रेणी (उजल) का समझा जाता था, जबकि 'पर्दा' न रखने वाले और 'नाता' करने वालों को निम्न श्रेणी (नातारायत) समझा जाता था।

हिन्दू समाज में संस्कारों का महत्त्व बना रहा। जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों का विधान था। कुछ संस्कार जैसे विवाह और मृतक संस्कार, नामकरण, चूड़ाकर्म, कर्णबंध इत्यादि जीवन के अभिन्न अंग समझे जाते थे। अन्तर्जातीय विवाहों का उल्लेख नहीं मिलता। निम्न श्रेणी के राजपूतों में विधवा विवाह का प्रचलन था और इसलिये उन्हें 'नातारायत' राजपूत कहा जाता था। ब्राह्मणों, उच्च राजपूतों, महाजन, ठोली आदि जातियों में विधवा विवाह नहीं होता था। खाती, जाट, माली, सुनार, कुम्हार, धोबी, तेली, कलाल, मंत्री आदि जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन था।[5]

जन साधारण में अनेक प्रकार के मनोविनोद के साधन प्रचलित थे और वे इनके द्वारा अपना मनोरंजन करते थे। जैसे मल्लयुद्ध, शिकार, गान,

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ. 54
2 वही, भाग 2, पृ. 142
3 वही, भाग 3, पृ. 269
4 वही, भाग 3, पृ. 222, 232 से 236
5 मर्दुमशुमारी, पृ. 612-620

नृत्य, संगीत आदि। इनके अतिरिक्त जलविहार, वनगोष्ठी में भी लोगों की रुचि थी। राजा एवं सामन्तों की देखादेख जनता में विलासिता बढ़ रही थी। अतः जन साधारण में भी कोक शास्त्र का पठन पालन होता था।[1] धनी वर्ग के लोग कीमती वस्त्र एवं आभूषण पहिनते थे। राजा के द्वारा युद्ध विजय को जन साधारण उत्सव के रूप में मनाते थे तथा दीपक जलाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे। जन साधारण राजा एवं राज-परिवार के प्रति अपने सम्मान का प्रदर्शन उनके स्वागत समारोह को धूमधाम से मनाकर प्रकट करता था। स्थान स्थान पर तोरण द्वार बनाए जाते थे तथा वंदनवारें बांधी जाती थीं। स्त्रियां मंगल कलश लेकर उनका स्वागत करती थीं।[2] व्यापारी समुदाय, जो अत्यन्त सम्पन्न होते थे, वे कीमती वस्त्र जो सोने चांदी के तारों से बने होते थे, उनको वन्दनवारों से सजाते थे। सारे बाजार में बिछायत की जाती थी तथा मखमल के गलीचे एवं तकियों से अपनी दुकानों को सजाकर स्वागत करते थे। प्रत्येक दुकान पर वीर योद्धाओं के चित्र सज्जित रखते थे।[3]

मुगल सम्राटों की मुस्लिम धर्म परस्त नीति की प्रतिक्रिया जन समुदाय में धार्मिक कट्टरता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। गाय तथा ब्राह्मण समाज में पूजनीय थे। हिन्दू धर्म में जन साधारण की आस्था थी तथा योद्धागण धर्म के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देने के लिए प्रस्तुत रहते थे।[4] मुसलमानों में भी धार्मिक कट्टरता पर्याप्त मात्रा में थी।

भूमि व्यवस्था में भू-स्वामित्व व्यक्तिगत भी था और सामूहिक भी। प्रत्येक परिवार की अपनी भूमि होती थी और परिवार के विभाजित होने पर परम्परागत उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार भूमि का बंटवारा भी होता था। किन्तु चूंकि इस काल में कृषि ही जीवन निर्वाह का प्रधान साधन थी, भूमि विभाजन की प्रवृत्ति भी अपेक्षाकृत कम थी।

---

1 सूरजप्रकाश, भाग 2; पृ. 157
2 वही, भाग 2, पृ. 54, 140
3 वही, भाग 2, पृ. 351
4 हकीकत बही, 1820

31 वीरविनोद, भाग 1, 2, श्यामलदास
32 वंशभास्कर, भाग 1, 2, 3, 4
33 राजरूपक : सं. रामकरण आसोपा
34 ऐतिहासिक वार्ते : बांकीदास
35 मारवाड़ रा परगनां री विगत : जिल्द 1, 2, मुहणोत नैणसी
36 तवारीख जागीरान : मुंशी हरदयाल
37 मर्दुमशुमारी रिपोर्ट, राज मारवाड़, तीसरा भाग, विद्याशाल, जोधपुर
38 राजस्थान री जातियां : बजरंगलाल लोहिया
39 मीराते अहमदी, भाग 2, 3 : मिर्जा मुहम्मद हसन
40 मुहणोत नैणसी की ख्यात : सं. रामकरण आसोपा
41 मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास : रामकरण आसोपा
42 मारवाड़ का इतिहास : रामकरण आसोपा
43 जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, 2. गौरीशंकर हीराचंद ओझा
44 मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, 2, पंडित विश्वेश्वरनाथ रेऊ
45 ऐनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, भाग 1, 2, टॉड
46 ग्लोरीज आफ मारवाड़ एण्ड द ग्लोरियस राठोड़—रेऊ
47 राजपूताने का इतिहास : जगदीशसिंह गहलोत
48 लेटर मुगल्स : ज. ना. सरकार
49 फाल ऑफ द मुगल एम्पायर : ज. ना. सरकार
50 मुगल एडमिनिस्ट्रेशन : ज. ना. सरकार
51 लेटर मुगल, भाग 1, 2 : इरविन
52 मारवाड़ एण्ड मराठाज : जी. आर. परिहार
53 मारवाड़ एण्ड मुगल्स : वी. एस. भार्गव
54 नोबिलिटी ऑफ मारवाड़ : आर. पी. व्यास
55 मुगलकालीन भारत : आशिर्वादीलाल
56 हिस्ट्री आफ शाहजहां : बी. पी. सक्सेना
57 हिस्ट्री आफ औरंगजेब : ज. ना. सरकार
58 राजस्थान भारती, भाग 2 : रघुबीर सिंह
59 सोसायटी एण्ड कल्चर इन मुगल एज : पी. एन. चोपड़ा
60 दी रूलिंग प्रिन्सेज, चीफ एण्ड लीडिंग परसनेजेज आफ राजपूताना एण्ड अजमेर, 1924
61 सोशियल लाइफ इन मिडाइवल राजस्थान : जी. एन. शर्मा
62 राजस्थान का इतिहास : जी. एन. शर्मा
63 गेजेटियर आफ द बोम्बे प्रेसिडेंसी, भाग 1 : कैम्पबेल
64 क्रोनोलोजी ऑफ मॉडर्न इण्डिया
65 पावलेट गेजेटियर आफ द बीकानेर स्टेट
66 डिस्ट्रिक्ट केटलॉग आफ परशियन सोर्सेज आफ मिडिवल इण्डियन हिस्ट्री —पी. सरन
67 इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग 1, 1929
68 पार्टी एण्ड पोलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट : सतीश चन्द्र
69 महाराजा मानसिंह ऑफ जोधपुर ६ हिज टाइम्स : पद्मजा शर्मा
70 स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री